अल-रिसाला

जुलाई-अगस्त 2023

अल-रिसाला
जुलाई-अगस्त 2023

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

अल-रिसाला
जुलाई-अगस्त 2023

CPS International

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम
आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

क़ुरबानी	3
हज का सबक़	4
रसूल का नमूना	6
आपकी ज़िंदगी कैसी गुज़र रही है?	7
एक सवाल	8
वक़्त ज़ाया न कीजिए	10
इज़्न-ए-ख़ुदावंदी के बग़ैर	11
दो क़िस्म के इंसान	12
जन्नत की क़ीमत	14
फ़ितरी तर्बियत	15
एक ख़तरनाक सिफ़त	17
डबल स्टैंडर्ड	18
दीनी तक़ाज़े	19
दावत के हुदूद	20
मुताला-ए-हदीस	22
डायरी, 1986	40
जदीद फ़िक्र	54
मुहासिबा-ए-नफ़्स क्या है?	56
पैग़ंबर-ए-इस्लाम का नमूना	57
दावत का काम कैसे करें	61

क़ुरबानी

दरख़्त क्या है? एक बीज की क़ुरबानी। एक बीज जब अपने को फ़ना करने के लिए तैयार होता है, तो उसके बाद ही यह मुमकिन होता है कि एक सरसब्ज़-ओ-शादाब दरख़्त ज़मीन पर खड़ा हो। ईंटों से अगर आप पूछें कि मकान किस तरह बनता है, तो वे ज़बान-ए-हाल से कहेंगी कि कुछ ईंटें जब इस बात के लिए तैयार होती हैं कि वे अपने आपको हमेशा के लिए ज़मीन में दफ़्न कर दें, उसके बाद वह चीज़ उभरती है, जिसे मकान कहते हैं। यही हाल इंसानी समाज की तामीर का है। इंसानियत के मुस्तक़बिल की तामीर उस वक़्त मुमकिन होती है, जबकि कुछ लोग अपने आपको बे-मुस्तक़बिल देखने पर राज़ी हो जाएँ। मिल्लत की तरक़्क़ी उस वक़्त होती है, जबकि कुछ लोग शऊरी फ़ैसले के तहत अपने आपको बे-तरक़्क़ी कर लें। क़ुरबानी के ज़रिये तामीर, यह क़ुदरत का एक आलमगीर क़ानून है। इसमें कभी कोई तब्दीली नहीं होती। क़ुदरत का यही उसूल माद्दी दुनिया के लिए भी है और क़ुदरत का यही उसूल इंसानी दुनिया के लिए भी।

इमारत में एक उसका गुंबद होता है और एक उसकी बुनियाद। गुंबद हर एक को दिखाई देता है, मगर बुनियाद किसी को दिखाई नहीं देती, क्योंकि वह ज़मीन के अंदर दफ़्न रहती है, मगर यही न दिखाई देने वाली बुनियाद है, जिस पर पूरी इमारत और उसका गुंबद खड़ा होता है। क़ौमी तामीर का मामला भी यही है। क़ुरबानी यह है कि आदमी क़ौमी तामीर में उसकी बुनियाद बनने पर राज़ी हो जाए। क़ुरबानी यह नहीं है कि आदमी जोश में आकर लड़ जाए और अपनी जान दे दे। क़ुरबानी यह है कि आदमी एक नतीजाख़ेज़ अमल के ग़ैर-मशहूर हिस्से में अपने को दफ़्न कर दे। वह ऐसे काम में अपनी

कोशिश सर्फ़ करे, जिसमें दौलत या शौहरत की शक्ल में कोई क़ीमत मिलने वाली न हो; जो मुस्तक़बिल के लिए अमल करे, न कि हाल के लिए। किसी क़ौम की तरक़्क़ी और कामयाबी का दारोमदार हमेशा इसी क़िस्म के अफ़राद पर होता है। यही वे लोग हैं, जो किसी क़ौम के मुस्तक़बिल की बुनियाद बनते हैं। वे अपने को दफ़्न करके क़ौम के लिए ज़िंदगी का सामान फ़राहम करते हैं। दीन के एतिबार से क़ुरबानी का मक़सद है— अपने वजूद के हैवानी हिस्से को क़ुरबान करना और अपने वजूद के रब्बानी हिस्से को जन्नत की अब्दी दुनिया के लिए ज़िंदा करना।

हज का सबक़

क़ुरआन में इस्लाम के एक रुक्न में हज का बयान है। इसके तहत एक बात यह बयान की गई है—

لِيَشْهَدُوا مَنَافِعَ لَهُمْ .

"ताकि वे अपने फ़ायदे को आँखों से देखें।"

So that they may witness its benefit for them. (22:28)

तफ़ासीर में 'मुनाफ़ा' का मुख़्तलिफ़ मतलब बयान किया गया है— अल-तिजारा, मनाफ़ी अल-आख़िरह, मनाफ़ी अल-दारैन, मनासिक, मग़फ़िरत, ख़ैर-ओ-बरकत वग़ैरह। इसका एक और मआनी भी हो सकता है, ताकि वे अपनी आँखों से ज़िंदगी के मुख़्तलिफ़ मैदानों में काम आने वाले मुफ़ीद तरीक़े देखें।

मक्का में वह मुफ़ीद तरीक़ा क्या है? रसूलुल्लाह ने जब मक्का फ़तह किया, तो उस वक़्त काबा इब्राहिमी तामीर के बजाय मुशरिकीन-ए-मक्का की बुनियाद पर क़ायम था। सीरत के मुताले से मालूम होता

है कि आपने काबा की इमारत में मुशरिकीन की तामीर को बाक़ी रखा (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1507) और यह इमारत आज तक इसी तरह हतीम और काबा की चौकोर इमारत की शक्ल में क़ायम है। इस तरीक़ेकार को मौजूदा दौर की बोलचाल में 'प्रैक्टिकल विज़डम' कहा जा सकता है यानी कोई चीज़ अमली तौर पर नामुमकिन हो, तो उसे तर्क (desertion) करके मुमकिन तर्ज़-ए-अमल इख़्तियार करना।

If some principle is not practical or workable,it should be modified as per the situation's circumstances.

यह सिर्फ़ हज या काबा की बात नहीं है। यह ज़िंदगी का उसूल है। मसलन, अकसर औरत और मर्द शादी के मामले में मेयार-पसंद होते हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें ऐसा जीवनसाथी मिले, जो हर एतबार से परफ़ेक्ट हो, मगर इस दुनिया में ऐसा होना मुमकिन नहीं। अगर एक एतिबार से परफ़ेक्ट होगा, तो दूसरे एतिबार से उसमें कमी होगी। इस मसले का हल अमेरिकन राइटर सिमोन एलकेलेस (Simone Elkeles, Born: 1970) ने इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है कि हम सब मिसमैच जोड़े हैं, जो हक़ीक़त में एडजस्ट करते हैं।

We're all a bunch of mismatched couples— that keep adjusting to the situation.

ज़िंदगी के हर मामले में ऐसा होता है कि कोई चीज़ जुज़ई एतिबार से हमारे मुताबिक़ होती है, लेकिन कुछ दूसरे पहलुओं से वह ना-मुवाफ़िक़ होती। ऐसे मौक़े पर प्रैक्टिकल विज़डम यह है कि ना-मुवाफ़िक़ पहलुओं के साथ टकराव का तरीक़ा इख़्तियार करने के बजाय एडजस्टमेंट का रास्ता इख़्तियार किया जाए।

—डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम

रसूल का नमूना

मौजूदा ज़माना तहरीकों का ज़माना है। चुनाँचे मौजूदा ज़माने में मुसलमानों के अंदर बड़ी तादाद में तहरीकें उठीं। इन मुस्लिम तहरीकों में एक चीज़ मुश्तरक है। वह यह कि हर तहरीक यह कहती है कि— الرَّسُولُ قُدوَتُنَا (रसूलुल्लाह हमारे लिए नमूना-ए-अमल हैं)। अल्फ़ाज़ मुख़्तलिफ़ हो सकते हैं, लेकिन हर तहरीक का यह मानना है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हमारे लिए 'क़ुदवा' या 'नमूना' (model) हैं, मगर अजीब बात है कि तक़रीबन हर एक ने पैग़ंबर का मॉडल मुस्तक़बिल के लिहाज़ से बना रखा है। शायद किसी ने भी हाल के एतिबार से पैग़ंबर को अपना मॉडल नहीं बनाया। मसलन, हर तहरीक का निशाना यह है कि वह मौजूदा सिस्टम को 'इस्लामाइज़' करे और इसे उस नमूने के मुताबिक़ बनाए, जिसे वह पैग़ंबर-ए-इस्लाम का नमूना समझता है। इसका नतीजा यह है कि हर तहरीक अपने आग़ाज़ ही से टकराव के रास्ते पर चल पड़ती है, क्योंकि वह देखती है कि सिस्टम पर किसी और का क़ब्ज़ा है, इसलिए वे पहला काम यह समझते हैं कि मौजूद सिस्टम को बदलें, ताकि दूसरे मतलूब सिस्टम को क़ायम किया जा सके, मगर पैग़ंबर-ए-इस्लाम की सीरत का मुताला बताता है कि आपने उसके बरअक्स यह पॉलिसी इख़्तियार की कि मसाइल को अवॉइड करो और मौक़े को इस्तेमाल करो (ignore the problems and avail the opportunities), मसलन— आपने क़दीम मक्का में काबा के अंदर बुतों की मौजूदगी के ख़िलाफ़ कोई तहरीक नहीं चलाई, बल्कि यह किया कि इन बुतों की वजह से काबा के पास ज़ियारत करने वालों का जो मजमा इकट्ठा होता था, उसे अपनी पुरअम्न दावत के लिए बतौर-ए-मौक़ा इस्तेमाल किया।

मौजूदा ज़माने की मुस्लिम तहरीकों का मुताला किया जाए, तो उनके यहाँ उस्वा-ए-रसूल की बातें तो बहुत मिलेंगी, लेकिन उनकी पॉलिसी में अमलन यह मिलेगा— मसाइल से टकराना और मौक़े को नज़र-अंदाज़ करना। इससे मालूम होता है कि इन तहरीकों को क़ुदवा या उस्वा की ख़बर तो है, मगर उन्हें हिकमत-ए-रसूल (prophetic wisdom) की कोई ख़बर नहीं। यही वजह है कि इन तहरीकों में टकराव तो मिलता है, लेकिन कोई मुस्बत नतीजा (positive result) नहीं मिलता।

आपकी ज़िंदगी कैसी गुज़र रही है?

मिसेज़ सहगल हमारे पड़ोस में रहती हैं। 4 फ़रवरी, 2020 को मैं अपने ऑफ़िस के पास पार्क में बैठा हुआ था कि वे आ गईं। बहुत दिनों के बाद मुलाक़ात हुई थी। चुनाँचे उन्होंने मुख़्तलिफ़ बातें पूछीं। उनमें से एक यह थी कि आपकी ज़िंदगी कैसी गुज़र रही है?

मैंने जवाब दिया कि मैं एक ऐसा इंसान हूँ, जो अल्लाह रब्बुल आलमीन की याद में जीता है। यही मेरी ज़िंदगी का सरमाया है। लोग बूढ़े होकर रिटायर्ड लाइफ़ का कोई पैटर्न इख़्तियार कर लेते हैं। मेरा पैटर्न यह नहीं है। मेरा पैटर्न है— अल्लाह की याद में जीना। अल्लाह की याद में जीने वाले के लिए कोई ब्रेक नहीं। मैं जैसे पहले अल्लाह की याद में जीता था, उसी तरह अब भी अल्लाह की याद में जीता हूँ। मिसाल के तौर पर मैं इस वक़्त एक पार्क में बैठा हुआ हूँ। यहाँ ख़ुदा की तरफ़ से मुझे कई चीज़ें सप्लाई हो रही हैं, मसलन— धूप और ऑक्सीजन वग़ैरह। ये सब मुझे निहायत सही मिक़दार (right proportion) में सप्लाई की जा रही हैं। अगर यही चीज़ें मुझे सही मिक़दार में न मिलें, तो मेरी सारी ज़िंदगी बिगड़ जाएगी। अब मैं सोचता हूँ कि ख़ुदा कितना

अज़ीम है। उसे यह भी मालूम है कि इंसान के लिए क्या चीज़ें दरकार हैं और हर चीज़ में उसके लिए सही मिक़दार क्या है, मसलन— ज़मीन के ऊपर सब्ज़ा और हरियाली है, लेकिन इसमें काँटे नहीं हैं, ताकि मैं आसानी के साथ ज़मीन पर चल-फिर सकूँ। इसी तरह ख़ालिक़ ने यहाँ मेरे लिए पानी की सप्लाई का इंतिज़ाम किया, मगर उसका निज़ाम यह है कि पानी की सप्लाई ज़मीन के ऊपर नदी और नहर वग़ैरह से की जा रही है और तेल की सप्लाई ज़मीन के अंदर से। ये दोनों चीज़ें हमें हमारी ज़रूरत के ऐन मुताबिक़ मिल रही हैं। अगर मामला उसके बरअक्स हो यानी पेट्रोल की सप्लाई ऊपर से हो और पानी की सप्लाई नीचे से, तो सारा निज़ाम बिगड़ जाएगा। इस तरह यहाँ बहुत-सी चीज़ें अपने आप सप्लाई हो रही हैं, लेकिन हर चीज़ सही मिक़दार में ऐन इंसान की ज़रूरत के मुताबिक़ उसे मिल रही है। अगर मिक़दार बिगड़ जाए, तो हर चीज़ इंसान के लिए मसला बन जाएगी।

एक सवाल

एक मर्तबा अपने वालिद मोहतरम से मेरी गुफ़्तुगू हुई, जो कि जामिया दारुल इस्लाम उमराबाद में माहद-ए-सानविया (middle school) के pincipal हैं। मेरी उनसे गुफ़्तुगू हुई, तो मैंने कहा कि मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब أَشَدُّ حُبًّا لِلَّهِ (अल्लाह से शदीद मोहब्बत) की अहमियत बताते हैं। उन्होंने पूछा कि वह कैसे? मैंने कहा कि ख़ुदा की नेमतों के तज़्किरे से और मिली हुई नेमतों पर शुक्र अदा करने से। दूसरी बात मैंने यह बताई कि आम तौर पर उम्मत के बहुत-से उलमा और अवाम अपने अकाबिर के बारे में बहुत हस्सास होते हैं। वे उनके ख़िलाफ़ ज़रा भी सुनना गवारा नहीं करते। इसके बर-ख़िलाफ़ मौलाना का यह हाल है कि मौलाना ख़ुदा के मामले में हमेशा हस्सास रहते हैं। वालिद

मोहतरम ने कहा कि यही तो असल चीज़ है कि आदमी ख़ुदा के बारे में ज़्यादा हस्सास हो जाए। मेरा सवाल यह है कि एक इंसान ख़ुदा के बारे में हस्सास कैसे बन सकता है?

—हाफ़िज़ सैय्यद इक़बाल अहमद उमरी, उमराबाद, तमिलनाडु

अल्लाह रब्बुल आलमीन से गहरे ताल्लुक़ का राज़ सिर्फ़ एक है। वह यह कि बंदा अल्लाह की दी हुई नेमतों को दरयाफ़्त करे, जो हर लम्हा उसे पहुँच रही है, मसलन— पानी की सप्लाई, हवा की मौजूदगी, ऑक्सीजन का निज़ाम, सूरज की रोशनी, ज़मीन में अश्या-ए-ख़ुराक का पैदा होना वग़ैरह-वग़ैरह। इस क़िस्म की अनगिनत नेमतें हैं, जो हर वक़्त इंसान को पहुँच रही हैं। इसकी वजह से इंसान का वजूद क़ायम है। इस क़िस्म की नेमतें इतनी ज़्यादा हैं कि उनके बारे में दुरुस्त तौर पर क़ुरआन में आया है—

إِنْ تَعُدُّوا نِعْمَتَ اللَّهِ لَا تُحْصُوهَا .

"अगर तुम अल्लाह की नेमतों को गिनो, तो तुम गिन नहीं सकते।" (14:34)

आदमी अगर इन हयात-बख़्श नेमतों को सुबह-शाम याद करता रहे, तो उन नेमतों की याद से वह हर वक़्त सरशार रहेगा। हक़ीक़त यह है कि मोहब्बत नेमत के जवाब (response) के तौर पर किसी इंसान के अंदर पैदा होती है। जब एक इंसान अल्लाह को अपने सबसे बड़े एहसान करने वाले और नेमत अता करने वाले की हैसियत से दरयाफ़्त करता है, तो इसके नतीजे में ऐसा होता है कि उसके सीने में अल्लाह के लिए मोहब्बत का समंदर उमड़ पड़े। इसी का नाम हुब्बे-शदीद है। मोहब्बत अपनी नौइयत के एतिबार से एक दरयाफ़्त (discovery) का नतीजा है, वह महज़ एक हुक्म की रस्मी तामील नहीं।

वक़्त ज़ाया न कीजिए

इंसान दुनिया में किसलिए आया है? वह इसलिए नहीं आया है कि यहाँ अपनी पसंद की जन्नत क़ायम करे। वह यहाँ सिर्फ़ इसलिए आया है कि अपने आपको ख़ालिक़ की पसंद के मुताबिक़ बनाए (सूरह बक़रह, 2:38)। इंसान को मौजूदा दुनिया में सिर्फ़ चंद साल की उम्र मिली है। चंद साल की इस मुद्दत में कोई दूसरा काम करना अपने आपको हमेशा के लिए ज़ाया कर लेना है। सही इस्तेमाल सिर्फ़ वह है, जो मौत के बाद काम आए। मौत के बाद सिर्फ़ वह इंसान कामयाब क़रार दिया जाएगा, जिसने मौत से पहले की ज़िंदगी में अपने आपको ख़ालिक़ की पसंद के मुताबिक़ बनाया हो।

ख़ालिक़ की पसंद क्या है? ज़मीन-ओ-आसमान में फैली हुई फ़ितरी निशानियाँ उसका ज़िंदा नमूना हैं (सूरह आले-इमरान, 3:190)। फ़ितरत की वादियों में जारी चश्मे ख़ालिक़ की पसंद का ऐलान कर रहे हैं। हरे-भरे दरख़्त अपनी ख़ामोश ज़ुबान में ख़ालिक़ की पसंद को बता रहे हैं। यहाँ की फ़िज़ाओं में उड़ते हुए परिंदे ख़ालिक़ की पसंद की चर्चा कर रहे हैं। यहाँ के ख़ूबसूरत पहाड़ों में ख़ालिक़ की पसंद का नग़मा गूँज रहा है। यहाँ की ख़ूबसूरत फ़िज़ाओं में हर तरफ़ ख़ालिक़ की पसंद का जलवा दिखाई देता है। फ़ितरत के माहौल में इंसान ख़ालिक़ के पड़ोस का तजुर्बा करता है। यह गोया फ़ितरत की ज़ुबान में ख़ालिक़ का कलाम है।

इस दुनिया में पैदा होने वाले हर इंसान का पहला फ़र्ज़ है कि वह क़ुरआन की रोशनी में ख़ालिक़ की इस ज़िंदा किताब को पढ़े और इसके मुताबिक़ अपनी ज़िंदगी की तश्कील करे। जो लोग यह काम न करें, उनके लिए मौत के बाद सिर्फ़ यह अंजाम सामने आएगा कि वे

अबद तक हसरत में जीते रहें। उनके हिस्से में सिर्फ़ यह मायूसाना सोच आए कि उनका केस सिर्फ़ मौक़े के इस्तेमाल से महरूमी का केस था।

Mine was a case of missed opportunities.

इस दुनिया में करने का काम सिर्फ़ यह है कि आदमी यहाँ अपनी शख़्सियत को जन्नती शख़्सियत बनाए, ताकि आख़िरत में उसे अल्लाह की अबदी जन्नत में दाख़िला मिले। मौजूदा दुनिया जन्नत की तामीर की जगह नहीं है, बल्कि वह जन्नती शख़्सियत की तामीर की जगह है। इस दुनिया में जन्नती शख़्सियत की तामीर ही वह काम है, जिसमें इंसान की हक़ीक़ी कामयाबी का राज़ है।

इज़्न-ए-ख़ुदावंदी के बग़ैर

क़ुरआन की एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

أَمْ لَهُمْ شُرَكَاءُ شَرَعُوا لَهُمْ مِنَ الدِّينِ مَا لَمْ يَأْذَنْ بِهِ اللَّهُ .

"क्या उनके कुछ शरीक हैं, जिन्होंने उनके लिए ऐसा दीन मुक़र्रर किया है, जिसकी अल्लाह ने इजाज़त नहीं दी।" (42:21)

शिर्क यह है कि किसी ग़ैर-ख़ुदा को वह दर्जा दिया जाए, जो सिर्फ़ अल्लाह रब्बुल आलमीन का हक़ है, मसलन— किसी से बे-इंतिहा मोहब्बत करना, किसी और को अपना सोल कंसर्न बनाना, किसी और से वह उम्मीद रखना, जो उम्मीद सिर्फ़ अल्लाह से रखनी चाहिए वग़ैरह। अल्लाह रब्बुल आलमीन हर इंसान का ख़ालिक़ और राज़िक़ है। इसलिए इंसान को चाहिए कि वह अपनी ज़िंदगी में बड़ाई का दर्जा सिर्फ़ अल्लाह रब्बुल आलमीन को दे, न कि किसी और को। "जिसकी

अल्लाह ने इजाज़त नहीं दी" का ताल्लुक़ सिर्फ़ मारूफ़ शिर्क से नहीं है, बल्कि उसका ताल्लुक़ इंसान के तमाम क़ौल और अमल से है। ख़ुदा के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ (Creation plan) के मुताबिक़, इंसान को वही बोलना है, जिसकी इजाज़त ख़ुदा ने दी है। इंसान को वही करना है, जिसका इजाज़त उसे अल्लाह रब्बुल आलमीन की तरफ़ से हासिल हो।

"जिसकी अल्लाह ने इजाज़त नहीं दी" का ताल्लुक़ हर इंसानी मामले से है, मसलन— झूठ बोलना "जिसकी अल्लाह ने इजाज़त नहीं दी" में शामिल है, ख़्वाह वह बराह-ए-रास्त झूठ हो या बिल-वास्ता झूठ। इसी तरह इंसान से बद-ख़्वाही करना भी "जिसकी अल्लाह ने इजाज़त नहीं दी" में शामिल है। इंसानी समाज में मनफ़ी (negative) जज़्बात के साथ जीना भी "जिसकी अल्लाह ने इजाज़त नहीं दी" में शामिल है यानी ख़ुदा की ज़मीन पर ऐसा काम करना, जिसकी इजाज़त अल्लाह ने न दी हो।

That is not sanctioned by Allah.

यह किसी मर्द या औरत के लिए नाक़ाबिल-ए-माफ़ी जुर्म की हैसियत रखता है। अगर किसी से ऐसा कोई अमल सरज़द होता है, तो उसे चाहिए कि वह खुले तौर पर अपनी ग़लती का एतिराफ़ करे और अल्लाह रब्बुल आलमीन से खुले दिल के साथ माफ़ी माँगे।

दो क़िस्म के इंसान

दुनिया में दो क़िस्म के इंसान पाए जाते हैं। एक वे, जो ज़्यादा बोलते हैं, लेकिन काम में पीछे रहते हैं और दूसरी क़िस्म उन लोगों की है, जो ब-क़द्र ज़रूरत बोलते हैं, वरना चुप रहते हैं। इंसानी नफ़्सियात का

मुताला बताता है कि जो लोग ज़्यादा बोलते हैं, वे कम सोचते हैं और जो लोग कम बोलते हैं, वे ज़्यादा सोचते हैं और जो बात भी करते हैं, तो सोच-समझकर करते हैं। पहली क़िस्म के इंसान को ग़ैर-संजीदा इंसान का नाम दिया जा सकता है और दूसरी क़िस्म के इंसान को संजीदा इंसान।

यह कोई सादा बात नहीं। ज़्यादा बोलने वाला इंसान करने के मामले में कम होगा। इसके बरअक्स जो इंसान कम बोलेगा, वह करने के मामले में ज़्यादा होगा। अक़्लमंद आदमी वह है, जो किसी के बोलने को न देखे, बल्कि यह देखे कि वो अमल के मामले में कैसा है। क़ासिम बिन मुहम्मद (वफ़ात : 107 हिजरी) बयान करते हैं कि मैंने देखा है कि अस्हाब-ए-रसूल अमल से ख़ाली बातों को पसंदीदगी की नज़र से नहीं देखते थे। इमाम मालिक ने बताया कि अस्हाब-ए-रसूल इंसान के अमल को देखते थे, वे इंसान के बोलने को नहीं देखते थे।

(अल-जामे ले-इब्न वह्ब, 406)

इस सिलसिले में क़ुरआन में दो मुताल्लिक़ आयतों का तर्जुमा यह है—

> "ऐ ईमान वालो, तुम ऐसी बात क्यों कहते हो, जो तुम करते नहीं। अल्लाह के नज़दीक यह बात बहुत नाराज़गी की बात है कि तुम ऐसी बात कहो, जो तुम करोगे नहीं।" (61:2-3)

मुफ़स्सिर इब्न कसीर इन आयात की तफ़्सीर में लिखते हैं कि यह उन लोगों पर तनक़ीद है, जो कहते हैं, लेकिन करते नहीं; वादा करते हैं, लेकिन उसे पूरा नहीं करते। बाज़ उलमा ने इस आयत से इस्तिदलाल किया है कि वादे का पूरा करना हर हाल में वाजिब है, ख़्वाह जिससे वादा किया है, वह उसकी ताकीद करे या न करे।

(तफ़्सीर इब्न कसीर, जिल्द 8, सफ़्हा 105)

हक़ीक़ी इंसान वह है, जिसके कहने और करने में मुताबिक़त हो, हत्ता कि उस वक़्त भी, जबकि आदमी को अपने कहने की क़ीमत देनी

पड़े। जब एक इंसान के अंदर यह सिफ़त पैदा हो जाएगी, तो वह बोलने से पहले बहुत ज़्यादा सोचेगा। वह कोई ऐसी बात बोलने से बचेगा, जो वह पूरी न कर सकता हो। इस हक़ीक़त को एक हदीस-ए-रसूल में इस तरह बयान किया गया है कि ईमान वालों को चाहिए कि वे ख़ैर की बात करें या चुप रहें। (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6,018)

जन्नत की क़ीमत

इंसान से जो आला अमल मतलूब है, वह असलन सिर्फ़ एक है और वह है— टोटल फ़्रीडम के साथ टोटल सरेंडर। यह एक बहुत अनोखी शर्त थी। अल्लाह रब्बुल आलमीन, जो आलिम-ए-कुल है, उसे मालूम था कि इंसान के लिए इस पर क़ायम होना बहुत ही मुश्किल काम होगा। इस कमी की तलाफ़ी के लिए इंसान को एक नादिर रिआयत दे दी गई, जिसे क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

قُلْ يٰعِبَادِيَ الَّذِيْنَ اَسْرَفُوْا عَلٰٓى اَنْفُسِهِمْ لَا تَقْنَطُوْا مِنْ رَّحْمَةِ اللّٰهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ يَغْفِرُ الذُّنُوْبَ جَمِيْعًا ۭ اِنَّهٗ هُوَ الْغَفُوْرُ الرَّحِيْمُ.

"कहो कि ऐ मेरे बंदो, जिन्होंने अपनी जानों पर ज़्यादती की है, अल्लाह की रहमत से मायूस न हों। बेशक अल्लाह तमाम गुनाहों को माफ़ कर देता है, वह बड़ा बख़्शने वाला, मेहरबान है।" (39:53)

इस्लाम की तारीख़ का मुताला किया जाए, तो यह मालूम होता है कि अहले-इस्लाम की गाड़ी बहुत कम राइट ट्रैक (right track) पर क़ायम रही। मुस्लिम तारीख़ में इनफ़िरादी तौर पर लोग राइट ट्रैक पर क़ायम मिलते हैं, लेकिन उमूमी सतह पर ऐसे लोग नहीं मिलते हैं, जो इस शर्त पर पूरे उतरें यानी इस्लाम की तारीख़ में सिर्फ़ कुछ अफ़राद

राइट ट्रैक पर पूरी तरह क़ायम रह सके। जमात के एतिबार से इसकी मिसाल शायद दौर-ए-अव्वल के बाद नहीं मिलती। क्या वजह है कि अहले-इस्लाम की गाड़ी बहुत कम राइट ट्रैक पर क़ायम रही। इसकी वजह यह है कि मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक़ इंसान को टोटल फ़्रीडम दी गई है, लेकिन इसके साथ उससे यह मतलूब है कि ख़ुदा के आगे वह टोटल सरेंडर का तरीक़ा इख़्तियार करे।

आम तौर पर इंसान राइट ट्रैक पर मजबूरी की सूरत-ए-हाल में क़ायम रहता है यानी जबर का मौक़ा हो, तो इंसान राइट ट्रैक पर रहता है, लेकिन आज़ादाना माहौल मिलते ही वह राइट ट्रैक से डीरेल (derail) हो जाता है। (सूरह अल-आराफ़, 7:171) सिर्फ़ वही लोग सेल्फ़ डिसिप्लिन की ज़िंदगी गुज़ारते हैं, जो कामिल मअनों में बा-उसूल इंसान हों। सेल्फ़ डिसिप्लिन यानी इख़्तियाराना तौर पर सच्चाई के आगे सरेंडर करना।

जन्नत को अहले-तक़्वा, इंतिहाई आला किरदार के लोगों का घर बताया गया है (सूरह अन-निसा, 4:69) यानी वे लोग, जो अल्लाह रब्बुल आलमीन की क़ुरबत चाहते हैं (सूरह अत-तहरीम, 66:11)। अहले-जन्नत के इन औसाफ़ को एक लफ़्ज़ में कहा जा सकता है कि वे आला दर्जे में क़ाबिल-ए-पेशीनगोई किरदार (predictable character) के हामिल होंगे यानी कामिल मअनों में बा-उसूल इंसान।

फ़ितरी तर्बियत

मेरी ज़िंदगी को पढ़ने के बाद एक साहब ने यह सवाल किया है कि आपकी अकसर आदतें ख़ुदाई अतिया (God-gifted) हैं या आपने नेचर से यह सीखा है।

मैने बताया— "मेरा तजुर्बा यह है कि मैं कभी प्रचलित सोसाइटी से ज़्यादा क़रीब नहीं हुआ। चुनाँचे अपने बारे में मैं यह कह सकता हूँ— I am a man with difference और यह कि I am a self-made man.

"मुझे याद आता है कि मैं गाँव में रहता था, लेकिन मैंने गाँववालों की कोई आदत नहीं सीखी, मसलन— मेरे बचपन का वाक़या है। मैं अपने घर के दरवाज़े पर खड़ा हुआ था। उसी वक़्त एक लड़का मुझे गाली के अल्फ़ाज़ बोलता हुआ चला गया। उसे सुनकर मेरे अंदर कोई रद्दे-अमल पैदा नहीं हुआ। मैंने सिर्फ़ यह कहा कि तुम ख़ुद। और यह कहते हुए मैं घर के अंदर चला गया। इसी तरह एक वाक़या यह है कि मेरे पड़ोस में एक साहब रहते थे। उनके यहाँ एक बार चोरी हो गई। चोर घर का बॉक्स खोलकर ज़ेवर निकाल ले गया। यह बात उस वक़्त की है, जब मैं छोटा था और पड़ोसी के घर आया-जाया करता था। चुनाँचे पड़ोसी की ख़ातून ने चोरी का इल्ज़ाम मेरे ऊपर लगा दिया। यह बात सुनकर मुझे हँसी आ गई। मुझे पड़ोसी की बात पर ग़ुस्सा नहीं आया, बल्कि हँसकर उसकी बात को नज़र-अंदाज़ कर दिया। इसकी वजह यह है कि मुझे महसूस हुआ कि यह तो बिलकुल बेतुकी बात है। इन लोगों ने मुझ पर एक ऐसी बात का इल्ज़ाम लगाया है, जो कभी मैंने नहीं किया है। यह मेरी आदत का मामला था। अपनी इस आदत की बिना पर मैं आस-पास के लोगों की बातों से कभी मुतास्सिर नहीं हुआ। मेरी यह आदत हमेशा जारी रही। इस बिना पर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी फ़ितरत हमेशा महफ़ूज़ रही। मैंने कभी गाँव के माहौल का असर क़ुबूल नहीं किया। मैं हमेशा फ़ितरत पर क़ायम रहा और फ़ितरत बिला-शुब्हा इंसान को सच्चाई की तरफ़ रहनुमाई करती है।"

एक ख़तरनाक सिफ़त

इंसान को इस्तिसनाई तौर पर यह सिफ़त दी गई है कि उसे हर चीज़ में एक लज़्ज़त (taste) का एहसास होता है। इस लज़्ज़त को इब्तिदाई दर्जे में रखा जाए, तो फ़ितरत के ऐन मुताबिक़ होगा और अगर इस लज़्ज़त को ला-महदूद तौर पर हासिल करने की कोशिश की जाए, तो इससे हर क़िस्म की बुराइयाँ वजूद में आएँगी।

इस मामले की हक़ीक़त यह है कि कोई चीज़ जब आदमी की ज़िंदगी में दाख़िल होती है, तो शुरू में वह सिर्फ़ लज़्ज़त के दर्जे में होती है। धीरे-धीरे वह आदत की सूरत इख़्तियार करती है। फिर मज़ीद तरक़्क़ी करके वह एडिक्शन बन जाती है। इसके बाद जो अगला मरहला आता है, वह है 'पॉइंट ऑफ़ नो रिटर्न'। जब यह आख़िरी मरहला आ जाए, तो आदमी की इस्लाह अमलन नामुमकिन है।

इसी हक़ीक़त को क़ुरआन में 'तौबा क़रीब' (speedy repentance) (4:17) से ताबीर किया गया है। इंसान को चाहिए कि जब उससे कोई ख़ता सरज़द हो, तो वह जल्द ही 'तौबा क़रीब' का तरीक़ा इख़्तियार करे। वह फ़ौरन अपना मुहासिबा करे, अपने आपको बदले, अपनी ग़लती का खुला एतिराफ़ करते हुए नए सिरे अपनी ज़िंदगी की तामीर करे।

ग़लती करने के बाद आदमी को चाहिए कि वह कल का इंतज़ार न करे, बल्कि वह आज ही पहली फ़ुर्सत में इसकी तलाफ़ी करे। फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़ यही तरीक़ा सही है। आदमी को कभी भी 'तौबा बईद' का इंतज़ार नहीं करना चाहिए, इसलिए कि ग़लती के पीछे हमेशा कोई लज़्ज़त शामिल रहती है— माद्दी लज़्ज़त या ज़हनी लज़्ज़त। अगर आदमी ग़लती के बाद फ़ौरन उसकी इस्लाह न

करे, तो उसके बाद उसके अंदर इस लज़्ज़त-पसंदी की बिना पर एक नफ़्सियाती अमल शुरू हो जाएगा। लज़्ज़त धीर-धीरे आदत बनेगी, उसके बाद वह एडिक्शन (addiction) बन जाएगी और फिर वह वक़्त आ जाएगा, जबकि आदमी के लिए इब्तिदाई हालत की तरफ़ वापसी ना-मुमकिन हो जाए।

डबल स्टैंडर्ड

यह एक्सप्रेस ट्रेन की फर्स्ट क्लास थी। एक मर्द और औरत अपने बच्चे के साथ कंपार्टमेंट में दाख़िल हुए। वहाँ पहले से एक आदमी था, जो सिगरेट पी रहा था। मर्द ने उसकी तरफ़ देखते हुए अंग्रेज़ी में कहा कि मेरा ख़याल है कि कंपार्टमेंट के अंदर सिगरेट पीने की इजाज़त नहीं।

I think smoking is not allowed inside the compartment.

इसके बाद मियाँ-बीवी दोनों एक तरफ़ बैठ गए और फिर निहायत इत्मिनान के साथ बच्चे के साथ ज़ोर-ज़ोर से बातें करने और क़हक़हा लगाने में मशग़ूल हो गए। उनके नज़दीक कंपार्टमेंट के अंदर 'धुआँ करना' नाजायज़ था, मगर उसी कंपार्टमेंट के अंदर शोर करना उनके नज़दीक ऐन दुरुस्त था। यही आजकल तमाम इंसानों का हाल है। एक आदमी इत्तिफ़ाक़ से जिस चीज़ का आदी नहीं है या जो चीज़ इत्तिफ़ाक़ से उसकी आदत में शामिल नहीं हुई है, उसका बुरा होना उसे मालूम है। वह किसी शख़्स को इसमें मशग़ूल देखता है, तो बहुत ज़ोर-शोर के साथ उसके ग़लत होने का ऐलान करता है, मगर उसी दर्जे की दूसरी बुराई, जिसमें वह आदमी ख़ुद मुब्तला है, वह उसे नज़र नहीं आती, हत्ता कि उसे यह एहसास भी नहीं होता कि यह ग़लत है। वह दूसरे की बुराई का ख़ूब ज़िक्र करता है, मगर वह अपनी बुराई के बारे में ख़ामोश रहता है।

बुराई की एक क़िस्म और है, जो इससे भी ज़्यादा अजीब है और वह है— 'ख़ुद रा फ़ज़ीहत दिगराँ रा नसीहत' यानी दूसरों को बुरा कहना और ख़ुद उसी बुराई में मुब्तला होना। एक आदमी दूसरे को दो-रुख़ा (double standard) होने का इल्ज़ाम देगा, हालाँकि वह ख़ुद दो-रुख़ा होगा। एक आदमी दूसरे के परिवारवाद (nepotism) के ख़िलाफ़ झंडा उठाएगा, हालाँकि अपने दायरे में वह ख़ुद परिवारवाद का शिकार होगा। एक आदमी दूसरे को इत्तिहाद का दुश्मन बताएगा, हालाँकि वह ख़ुद इत्तिहाद का दुश्मन होगा। एक आदमी दूसरे की मस्लहत-परस्ती का पर्दा हटाएगा, हालाँकि वह अपने मफ़ाद के मामले में ख़ुद भी मस्लहत-परस्त बना हुआ होगा। लोग तज़ाद (contradiction) में जी रहे हैं। वे भूल जाते हैं कि यह ख़ुदा की दुनिया है और ख़ुदा की बे-तज़ाद दुनिया में तज़ाद का रवैया इतना बड़ा जुर्म है, जिसकी कोई माफ़ी नहीं।

दीनी तक़ाज़े

1. दीन में पहली चीज़ ईमान है। ईमान ख़ुदा की मारिफ़त का नाम है। एक इंसान पर जब यह हक़ीक़त खुलती है कि ख़ुदा उसका रब है और वह उसका बंदा और यह कि ख़ुदा ने उसकी हिदायत के लिए मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह को अपना रसूल बनाकर उसके पास भेजा है, तो वह बे-इख़्तियार कह उठता है— ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह। यही ईमान है और इसी को कलिमा-ए-इस्लाम कहा जाता है।
2. ईमान की दरयाफ़्त के फ़ौरन बाद यह होता है कि आदमी अपने ख़ालिक़-ओ-मालिक के आगे मुकम्मल तौर पर झुक जाता है। वह अपने तमाम बेहतरीन एहसासात को ख़ुदा की तरफ़ मोड़ते हुए उसका इबादत-गुज़ार बन जाता है। इसी का नाम शरीयत में इबादत है।

3. ऐसे इंसान का वास्ता जब ख़ुदा के बंदों से पड़ता है, तो वह अपने मिज़ाज के तहत हर एक से तवाज़ो के साथ पेश आता है। वह हर एक का ख़ैर-ख़्वाह बन जाता है। लोगों के साथ मामला करने में वह हमेशा इंसाफ़ का तरीक़ा इख़्तियार करता है। उससे किसी को ग़ैर-इंसानी सुलूक का तजुर्बा नहीं होता। यही वह रविश है, जिसका नाम इस्लामी अख़्लाक़ है। इस्लामी अख़्लाक़ के उसूल पर क़ायम रहने के लिए सब्र इंतिहाई तौर पर ज़रूरी है। जो आदमी सब्र करने के लिए तैयार न हो, वह लोगों के साथ इस्लामी अख़्लाक़ बरतने में भी कामयाब नहीं हो सकता।
4. जिस आदमी के अंदर ईमान की कैफ़ियत पैदा हो जाए, वह अपने क़रीबी माहौल के बारे में ग़ैर-जानिबदार बनकर नहीं रह सकता। उसका एहसास मजबूर करता है कि वह बुरा करने वालों को बुराई करने से रोके और लोगों को भलाई का तरीक़ा इख़्तियार करने की तरग़ीब दे। इसका नाम शरीयत में 'अम्र बिल मारूफ़ और नहि अनिल मुनकर' है।
5. आख़िरी चीज़ दावत इलल्लाह है यानी तमाम इंसानों को यकतरफ़ा ख़ैर-ख़्वाही के साथ ख़ुदा के तख़्लीक़ी नक़्शे से बाख़बर करना, इंसान को उसके रब से जोड़ना, उसे ख़ुदा-परस्तिशाना ज़िंदगी से आगाह करना।

दावत के हुदूद

क़ुरआन में यह हुक्म दिया गया है कि तुम लोगों को नसीहत करो, क्योंकि तुम सिर्फ़ नसीहत करने वाले हो। तुम लोगों के ऊपर दारोग़ा नहीं हो (88:21-22)। इसी तरह दूसरे मक़ाम पर कहा गया है कि तुम

लोगों के ऊपर ज़बरदस्ती करने वाले नहीं हो, पस तुम क़ुरआन के ज़रिये उस शख़्स को नसीहत करो, जो मेरे पैग़ाम को सुनने के लिए राज़ी हो (50:45)। हज़रत अबू मूसा कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जब अपने किसी सहाबी को किसी काम पर भेजते, तो फ़रमाते—

بَشِّرُوا وَلَا تُنَفِّرُوا، وَيَسِّرُوا وَلَا تُعَسِّرُوا.

"ख़ुश-ख़बरी दो और नफ़रत पैदा न करो, आसानी पैदा करो और लोगों को मुश्किल में न डालो।"

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 1,732)

इस तरह की आयतें और हदीसें गोया दावत के अमल की हदबंदी कर रही हैं। इससे मालूम होता है कि दाई का काम सिर्फ़ पहुँचाने का है, उसे 'इज्बार' (ज़ोर-ज़बरदस्ती) के दायरे में दाख़िल नहीं होना है। इसके लिए यह मुनासिब तरीक़ा है कि वह समझाने-बुझाने के तमाम ज़राए को इस्तेमाल करे, मगर उसे यह हक़ नहीं कि वह दीन के नाम पर धरना या एहतिजाज वग़ैरह का रास्ता इख़्तियार करके आम लोगों के लिए तकलीफ़ का सबब बने (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 2,629)। मिसाल के तौर पर 'शत्म-ए-रसूल (रसूल की ग़ुस्ताख़ी)' को लीजिए। शत्म-ए-रसूल का वाक़या पेश आने पर मुसलमानों का प्रचलित एहतिजाजी रद्दे-अमल इस्लामी तालीमात के मुताबिक़ नहीं। यहाँ एक दाई को यह करना है कि वह दलाइल के ज़रिये पैग़ंबर-ए-इस्लाम की सीरत और उनके पैग़ाम को लोगों के सामने पेश करे। शत्म-ए-रसूल का वाक़या आपको यह मौक़ा फ़राहम करता है कि आप लोगों के सामने पैग़ंबर की तालीमात को पुर-अम्न अंदाज़ में करें, लेकिन अगर कुछ लोग शत्म-ए-रसूल के ख़िलाफ़ मुहिम चलाएँ, शत्म-ए-रसूल के ख़िलाफ़ सड़कों पर धरना दें, शातिम का पुतला बनाकर उसे जलाएँ और दुकानों को बंद

कराएँ वग़ैरह-वग़ैरह, तो इस क़िस्म की मुहिम दुरुस्त न होगी। यह गोया इबलाग़ (convey) की हद को पार करके इज्बार (impose) की हद में दाख़िल होना है। ऐसा तरीक़ा आम इंसानों को अल्लाह और उसके दीन से दूर करने का सबब बनता है। इस क़िस्म की 'एंटी' मुहिम चलाना गोया दावती मौक़े को क़त्ल करना है। अपनी हक़ीक़त के एतिबार से यह बिगाड़ पैदा करना है, न कि दीन की ख़िदमत।

मुताला-ए-हदीस

शरह मिश्कात अल-मसाबीह

मआज़ बिन जबल कहते हैं कि उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से अफ़ज़ल ईमान की बाबत सवाल किया। आपने फ़रमाया— "यह कि तुम अल्लाह के लिए मोहब्बत करो और तुम अल्लाह के लिए नापसंद करो और अपनी ज़ुबान को अल्लाह के ज़िक्र में मशग़ूल रखो।" उन्होंने कहा— "और क्या? ऐ ख़ुदा के रसूल!" आपने फ़रमाया कि तुम दूसरों के लिए वही पसंद करो, जो तुम ख़ुद अपने लिए पसंद करते हो और तुम दूसरों के लिए भी उस चीज़ को नापसंद करो, जिसे तुम अपने लिए नापसंद करते हो।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 22,130)

अफ़ज़ल ईमान से मुराद आला ईमान है। यह आला ईमान उस वक़्त पैदा होता है, जबकि आदमी का ईमान सिर्फ़ लफ़्ज़ी इक़रार के हम-मअनी न हो, बल्कि वह शऊरी दरयाफ़्त और अंदरूनी इंक़लाब की हैसियत रखता हो। असल यह है कि इस्लाम का आग़ाज़ कलिमा-ए-ईमान के इक़रार से शुरू होता है, मगर अल्लाह के नज़दीक इतना ही काफ़ी नहीं। आदमी के लिए ज़रूरी है कि वह ईमान के लफ़्ज़ी

इक़रार को अक़्ली सतह का ईमान बनाए। यह गोया कलिमा-गोई के बाद उसकी तकमील है। इसी तकमीली ईमान को क़ुरआन में दाख़िल 'अल-क़ल्ब ईमान' (49:14) कहा गया है। इस क़िस्म का ईमान जब किसी को मिलता है, तो वह अपने मुहब्बत-ओ-नफ़रत के जज़्बात को अपनी ख़्वाहिश के ताबे करने के बजाय वह उसे मुकम्मल तौर पर हक़ के ताबे कर देता है। उसके अंदर वही रूहानी और अख़्लाक़ी सिफ़ात पैदा हो जाती हैं, जिनका इस हदीस में ज़िक्र किया गया है।

अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि एक आदमी ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल, अल्लाह के नज़दीक सबसे बड़ा गुनाह क्या है? आपने फ़रमाया कि तुम किसी को अल्लाह के बराबर ठहराओ, हालाँकि अल्लाह ने तुमको पैदा किया है। उसने कहा कि इसके बाद क्या है? आपने फ़रमाया कि तुम अपनी औलाद को इस अंदेशे से क़त्ल करो कि वे तुम्हारे साथ खाएँगे। उसने कहा कि इसके बाद क्या? आपने फ़रमाया कि तुम अपने पड़ोसी की बीवी के साथ ज़िना करो। फिर अल्लाह ने इसकी तस्दीक़ में क़ुरआन कर यह आयत (25:68) नाज़िल फ़रमाई—

> "और जो लोग अल्लाह के सिवा किसी दूसरे माबूद को नहीं पुकारते हैं और वे अल्लाह की हराम की हुई किसी जान को क़त्ल नहीं करते, मगर हक़ पर और जो बदकारी नहीं करते और जो शख़्स ऐसे काम करेगा, तो वह सज़ा से दो-चार होगा।"
> (मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6,861; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 86)

ख़ुदा के मामले में किसी इंसान का सबसे बड़ा जुर्म यह है कि वह किसी को अज़्मत का वह दर्जा दे, जो सिर्फ़ एक ख़ुदा का हक़ है। इंसान के मामले में सबसे बड़ा जुर्म यह है कि किसी ख़ुद-साख़्ता सबब की

बिना पर उसे क़त्ल कर दिया जाए। औरत के मामले में सबसे बड़ा जुर्म यह है कि एक आदमी उसके साथ ज़िना का फ़ेअल करे। हालाँकि औरत के साथ आख़िरी हद तक एहतिराम का मामला करना फ़र्ज़ है।

49

अब्दुल्लाह बिन अम्र रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि बड़े गुनाह ये हैं—

> "अल्लाह के साथ किसी को शरीक ठहराना, माँ बाप की ना-फ़रमानी, इंसान को क़त्ल करना और झूठी क़सम खाना।"
>
> (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6,675)

गुनाह की दो क़िस्में हैं— एक ग़लती और दूसरा सरकशी। ग़लती वह है, जो नफ़्स के ज़ेर-ए-असर की जाए और सरकशी वह है, जो अना और तकब्बुर के जज़्बे के तहत की जाए। ग़लती क़ाबिल-ए-माफ़ी हो सकती है, लेकिन सरकशी अल्लाह के नज़दीक क़ाबिल-ए-माफ़ी नहीं।

50

(ऊपर दी गई हदीस और) अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत में यह फ़र्क़ है कि इसमें झूठी क़सम (الْيَمِينُ الْغمُوس) की जगह पर झूठी गवाही (شَهَادَةُ الزُّورِ) के अल्फ़ाज़ आए हैं। (मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 2,654; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 88)

झूठी क़सम और झूठी गवाही दोनों स्पिरिट के एतिबार से एक हैं यानी ख़िलाफ़-ए-वाक़या बात को सच साबित करना। झूठी गवाही देना बिला-शुब्हा एक अज़ीम गुनाह है। झूठी गवाही देने वाला एक आदमी को जानते-बूझते उसके जायज़ हक़ से महरूम करने की कोशिश करता है। इस क़िस्म का फ़ेअल बिला-शुब्हा एक ना-क़ाबिल-ए-माफ़ी जुर्म है।

51

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "तुम लोग सात हलाक़ चीज़ों से बचो।" लोगों ने कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल! वे क्या हैं? आपने फ़रमाया— "अल्लाह के साथ शरीक ठहराना और जादू और ऐसी जान को ना-हक़ क़त्ल करना, जिसे अल्लाह ने हराम किया है और सूद खाना, यतीम का माल खाना, मैदान-ए-जंग से पीठ फेरकर भागना और पाक दामन, सीधी-सादी मोमिन औरतों पर झूठा इल्ज़ाम लगाना।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 2,766; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 89)

गुनाह के मुख़्तलिफ़ दर्जे हैं। सबसे ज़्यादा बड़ा गुनाह वह है, जो नीच और कमीनगी की सतह पर किया जाए। मज़्कूरा सातों गुनाह की नौइयत यही है। इन कामों को करने वाला अपने आपको पस्त इंसानियत की सतह पर गिरा लेता है। इसलिए उन्हें मुहलिकात (बरबाद करने वाले आमाल) कहा गया है।

52

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "जब कोई ज़ानी ज़िना करता है, तो उस वक़्त वह मोमिन नहीं होता और जब कोई चोर चोरी करता है, तो उस वक़्त वह मोमिन नहीं होता और जब कोई शराब पीने वाला शराब पीता है, तो उस वक़्त वह मोमिन नहीं होता और कोई माल छीनने वाला उस वक़्त मोमिन नहीं होता, जबकि वह माल छीन रहा हो और लोग उसे बेबसी की नज़रों से देख रहे हों और जब कोई ख़यानत करने वाला ख़यानत करता है, तो उस वक़्त वह मोमिन नहीं होता। बस तुम उनसे बचो।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 2,475; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 57)

एक अंगारे को देखकर यह कहना कि यह आग है, अपने आप यह मफ़हूम रखता है कि आदमी उसे नहीं छुएगा। इसी तरह जब एक आदमी ईमान लाकर ख़ुदा की ख़ुदाई का इक़रार करे, तो इसका लाज़िमी मफ़हूम यह है कि इक़रार करने वाला उन तमाम चीज़ों को छोड़ देगा, जो ख़ुदा की मर्ज़ी के सरासर ख़िलाफ़ हैं। ऐसी हालत में जब एक आदमी इस क़िस्म का कोई खुला हुआ ख़िलाफ़-ए-ईमान फ़ेअल करे, तो उसने अमलन अपने आपको ईमान से दूर कर लिया। वह दोबारा साहिब-ए-ईमान उस वक़्त बन सकता है, जबकि वह अपनी ग़लती का सच्चा एतिराफ़ करके लौटे और नए सिरे से ईमान पर क़ायम हो जाए।

53

अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत में इस तरह है— जब कोई क़त्ल करने वाला क़त्ल करता है, तो वह मोमिन नहीं होता। इकरिमा कहते हैं कि मैंने अब्दुल्लाह बिन अब्बास से कहा कि मोमिन से ईमान कैसे निकल जाता है? उन्होंने कहा कि इस तरह और फिर उन्होंने अपने दोनों हाथ की उँगलियों को एक दूसरे में दाख़िल किया और फिर उनको निकाल लिया। फिर कहा कि अगर उसने तौबा कर ली, तो ईमान इस तरह वापस आ जाता है। फिर यह कहते हुए उन्होंने अपनी उँगलियों को दोबारा इसमें दाख़िल कर लिया। अबू अब्दुल्लाह अल-बुखारी कहते हैं कि ऐसा आदमी उस वक़्त मुकम्मल मोमिन नहीं होता और न उसे ईमान की रोशनी हासिल रहती है।

(सहीह अल-बुखारी, हदीस नंबर 6,809)

ईमान आदमी के जिस्म का माद्दी जुज़ नहीं है, जिस तरह हाथ और पाँव इंसानी जिस्म के माद्दी (physical) अजज़ा हैं। ईमान दरअसल इल्म व मारिफ़त की मानिंद एक नफ़्सियाती हक़ीक़त है। आदमी ख़ुद अपने इरादे से ईमान को अपने अंदर दाख़िल करता है और अपने इरादे के तहत अपने आपको उससे थोड़ा या मुकम्मल तौर पर दूर कर सकता

है। ईमान से जुदाई की इंतिहाई सूरत वह है, जिसे इर्तिदाद (apostasy) कहा जाता है, लेकिन जो शख़्स वक़्ती उकसावे के तहत ख़िलाफ़-ए-ईमान फ़ेअल करे और फिर सच्चे दिल के साथ तौबा कर ले, वह गोया वक़्ती तौर पर अपने ईमान से जुदा हुआ था और फिर दोबारा उसकी तरफ़ लौट आया।

54

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "मुनाफ़िक़ की निशानियाँ तीन हैं।" इस पर मुस्लिम की रिवायत में इज़ाफ़ा है— "अगरचे वह रोज़े रखे और नमाज़ पढ़े और गुमान करे कि वह मोमिन है।" इसके बाद दोनों रिवायत के अल्फ़ाज़ ये हैं— "यह कि वह बात करे तो, झूठ बोले और जब वह वादा करे, तो उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करे और जब उसे अमानत सौंपी जाए, तो वह ख़यानत करे।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 33; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 59)

जो आदमी ज़ुबान से ईमान का इक़रार करे, मगर ईमान उसके दिलो-दिमाग की गहराइयों में उतरा हुआ न हो, तो यही वह इंसान है, जो मुनाफ़क़त की रविश इख़्तियार करता है। वह अपनी ज़िंदगी के मामलात को उसूल की बुनियाद पर क़ायम करने के बजाय दुनियावी मस्लहतों की बुनियाद पर चलाने लगता है।

55

अब्दुल्लाह बिन अम्र रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "चार चीज़ें जिसके अंदर हों, वह ख़ालिस मुनाफ़िक़ है और जिसके अंदर उनमें से कोई एक ख़स्लत हो, तो उसके अंदर निफ़ाक़ की एक सिफ़त होगी, यहाँ तक

कि वह इसे छोड़ दे। जब उसे अमानत दी जाए, तो उसमें वह ख़यानत करे और जब वह बात करे, तो वह झूठ बोले और जब वह वादा करे, तो वह उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करे और जब वह झगड़ा करे, तो वह गाली देने लगे।"

(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 34; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 59)

मुनाफ़िक़ आदमी अगरचे बज़ाहिर ईमान का दावा करता है, मगर वह ईमान को अपनी ज़िंदगी में एक उसूल की हैसियत से इख़्तियार नहीं करता। उसकी इस बे-उसूली और बे-हिसी का नतीजा यह होता है कि जब उसे कोई मामला पेश आता है, तो वह फ़ौरन ऐसी रविश में मुब्तला हो जाता है, जो ईमान से मुताबिक़त नहीं रखती। हस्सासियत बुराई के ख़िलाफ़ रोक है। जो आदमी ईमान की हस्सासियत से ख़ाली हो, वह अपने दुनियावी मफ़ाद की ख़ातिर खुले तौर पर बे-उसूली का तरीक़ा अपनाएगा, मगर उसे अपनी ग़लती का एहसास तक न होगा।

56

अब्दुल्लाह इब्न अम्र रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "मुनाफ़िक़ की मिसाल उस बकरी जैसी है, जो दो ग़ल्लों (herds) के दरमियान हैरान फिर रही हो, कभी इस तरफ़ जाती हो और कभी उस तरफ़।"

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 17)

मुनाफ़िक़ इंसान अपने मिज़ाज की बिना पर किसी मुस्तक़िल उसूल का पाबंद नहीं होता। वह सिर्फ़ वक़्ती मफ़ाद का पाबंद होता है। यही वजह है कि उसकी वफ़ादारी हमेशा बदलती रहती है। माद्दी मफ़ाद की बुनियाद पर वह कभी एक तरफ़ हो जाता है और कभी दूसरी तरफ़।

57

सफ़वान बिन अस्साल रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि एक यहूदी ने अपने एक साथी से कहा कि आओ, हम उस नबी के पास चलें। उसके साथी ने उससे कहा कि तुम उनको नबी मत कहो, इसलिए कि अगर उन्होंने तुमसे यह सुन लिया तो उनकी आँखें चार हो जाएँगी। फिर वे दोनों रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास आए। फिर इन दोनों ने नौ वाज़ेह निशानियों के बारे में आपसे पूछा। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि ने फ़रमाया— "तुम अल्लाह के साथ किसी चीज़ को शरीक न करो, तुम चोरी न करो, तुम ज़िना न करो और तुम ना-हक़ किसी जान को क़त्ल न करो, जिसे ख़ुदा ने हराम ठहराया है और तुम किसी बेगुनाह को हाकिम के पास न ले जाओ, ताकि वह उसे क़त्ल कर दे, तुम जादू न करो, तुम सूद न खाओ, तुम पाक दामन औरत पर तोहमत न लगाओ, तुम मैदान-ए-जंग से पीठ फेरकर न भागो और तुम यहूद पर यह ख़ास हुक्म है कि तुम लोग सब्त के क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी न करो। रावी कहते हैं कि फिर उन दोनों ने आपके दोनों हाथ और दोनों पाँव चूम लिये और कहा की हम यह गवाही देते हैं कि आप नबी हैं। आपने फ़रमाया कि फिर तुम्हें मेरी इत्तिबा से क्या चीज़ रोक रही है? उन दोनों ने कहा कि दाऊद अलैहिस्सलाम ने अपने रब से कहा कि उनकी औलाद में हमेशा नबी आते रहें और हम डरते हैं कि अगर हमने आपकी इत्तिबा की, तो यहूद हमें क़त्ल कर देंगे।"
(सुनन अत-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2,733; सुनन अन-नसाई, हदीस नंबर 4,078)

यहूदी आलिम ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से तौरात के मख़्सूस अहकाम की बाबत दरयाफ़्त किया। दौर-ए-प्रेस से पहले तौरात का इल्म सिर्फ़ कुछ उलमा को होता था। आम लोग इससे बे-ख़बर रहते थे। यहूदी आलिम को मालूम था कि रसूल या असहाब-ए-रसूल को तौरात का इल्म नहीं, मगर जब आपने यहूदी आलिम के

सवाल का ठीक-ठीक जवाब दे दिया, तो उसे यक़ीन हो गया कि आप ख़ुदा के पैग़ंबर हैं। इस खुली दलील के बावजूद वे दोनों यहूदी ईमान नहीं लाए। इसका सबब अपनी क़ौम का डर था। तारीख़ के हर दौर में यही हुआ है कि हक़ की वज़ाहत के बावजूद माद्दी मसले की बिना पर लोग हक़ को क़ुबूल करने से बाज़ रहे।

58

अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "तीन बातें ईमान की असल हैं— उस शख़्स से रुक जाना, जो यह कहे कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं। तुम किसी गुनाह की बिना पर उसे काफ़िर न कहो और न तुम किसी अमल की बुनियाद पर उसे इस्लाम से ख़ारिज करो और जिहाद जारी रहेगा, मेरी बेअसत से लेकर उस वक़्त तक, जबकि इस उम्मत का आख़िरी हिस्सा दज्जाल से जंग करेगा। उसे न ज़ालिम का ज़ुल्म रोकेगा और न आदिल का अदल और तक़दीर के ऊपर ईमान लाना।" (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 2,532)

अल्लाह के यहाँ हर आदमी का फ़ैसला उसकी नीयत के बुनियाद पर किया जाएगा, मगर इंसान किसी की दाख़िली नीयत को नहीं जान सकता। इसलिए इंसान को चाहिए कि वह लोगों के ज़ाहिर की बुनियाद पर उनके साथ मामला करे। वह उनके बातिन की बुनियाद पर कोई हुक्म न लगाए। जिहाद से मुराद जिहाद बिल-क़ुरआन है यानी पुर-अम्न दावती अमल। आदिल हाकिम का ज़माना हो, तब भी जिहाद का अमल जारी रहेगा। ज़ाहिर है कि इससे मुराद जंग नहीं हो सकती, क्योंकि आदिल हाकिम के ख़िलाफ़ जंग एक फ़साद का अमल होगा, न कि जिहाद का। पुर-अम्न दावती अमल एक ऐसा काम है, जिसका ताल्लुक़ ज़ालिम हुक्मराँ या आदिल हुक्मराँ से नहीं है। यह हर दौर में मुसलसल जारी रहने वाला अमल है। असल यह है कि मौजूदा दुनिया

जद्दोजहद की दुनिया है। यहाँ इस्लामी मक़ासिद के लिए फ़िक्री जिहाद का अमल हमेशा जारी रहता है। यह अमल दौर-ए-आख़िर में दज्जाल के ज़ुहूर तक जारी रहेगा। दज्जाल से मुराद ग़ालिबन कोई फ़र्द नहीं है, बल्कि एक अज़ीम फ़ित्ना है। दज्जाल से क़िताल का मतलब ग़ालिबन मुसल्लह जंग (armed struggle) नहीं है, बल्कि फ़ित्ना-ए-दज्जाल के ख़ात्मे के लिए फ़िक्री जद्दोजहद है।

इस्लाम की एक बुनियादी तालीम तक़दीर है। तक़दीर के अक़ीदे का मतलब इंसान की मजबूरी को बताना नहीं है, बल्कि ख़ुदा की क़ुदरत-ए-कामिला को बताना है। ख़ुदा ने अपनी क़ुदरत-ए-कामिला के तहत आज़माइश की मस्लहत की बिना पर इंसान को आज़ादी अता फ़रमाई है। आज़ादी का यह माहौल क़यामत तक बाक़ी रहेगा।

59

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "जब बंदा ज़िना करता है, तो उस वक़्त ईमान उससे निकल जाता है। वह उसके सिर के ऊपर सायेबान की तरह रहता है। फिर जब वह इस बुरे अमल से बाहर आता है, तो उसका ईमान उसकी तरफ़ वापस आ जाता है।"
(सुनन अत-तिरमिज़ी, नंबर 2,625; सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4,690)

ज़िना एक बद-अख़्लाकी का अमल है और ईमान एक पाकीज़ा हक़ीक़त। दोनों एक-दूसरे के साथ जमा नहीं हो सकते। यही वजह है कि ज़िना के वक़्त ज़ानी का ईमान उससे जुदा हो जाता है। ताहम अगर उसके ज़िना की हैसियत एक वक़्ती फ़ेअल की हो और इसके बाद वह हक़ीक़ी मअनों में नदामत का सबूत दे, तो उसका ईमान अल्लाह की रहमत से दोबारा उसे हासिल हो जाएगा।

60

मआज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने मुझे दस बातों की नसीहत फ़रमाई। आपने फ़रमाया कि अल्लाह के साथ किसी चीज़ को शरीक न ठहराओ, अगरचे तुम्हें क़त्ल कर दिया जाए और तुम्हें जला दिया जाए और तुम अपने वालिदैन की ना-फ़रमानी न करो, अगरचे वे तुम्हें हुक्म दें कि तुम अपने अहल को और अपने माल को छोड़ दो। तुम हरगिज़ जान-बूझकर फ़र्ज़ नमाज़ों को न छोड़ो, क्योंकि जिसने जान-बूझकर फ़र्ज़ नमाज़ को छोड़ा, तो अल्लाह का ज़िम्मा उससे जाता रहता है और तुम हरगिज़ शराब न पियो, क्योंकि वह हर बुराई की जड़ है। तुम अल्लाह की ना-फ़रमानी से पूरी तरह बचो, क्योंकि ना-फ़रमानी से अल्लाह का ग़ज़ब नाज़िल होता है और तुम हरगिज़ मैदान-ए-जंग से पीठ फेरकर न भागो, अगरचे लोग हलाक हो जाएँ और अगर लोगों पर मौत (वबा) आ जाए और तुम उनमें मौजूद हो, तो तुम अपनी जगह ठहरे रहो। अपने घरवालों पर अपनी इस्तिताअत के मुताबिक़ ख़र्च करो और तादीब का असा उनके ऊपर से न हटाओ और अल्लाह के मामले में उन्हें डराते रहो।" (मुसनद अहमद, नंबर 22,075)

इस हदीस में वे ज़िम्मेदारियाँ बताई गई हैं, जो एक मोमिन पर इनफ़िरादी हैसियत से आयद होती हैं। उनमें से बाज़ अहकाम का ताल्लुक़ रोज़ाना की ज़िंदगी से है, मसलन— शिर्क से परहेज़ और नमाज़ का एहतिमाम और बाज़ अहकाम का ताल्लुक़ हालात की निस्बत से है यानी वे उस वक़्त मतलूब हैं, जबकि अमली तौर पर उनके मुताबिक़ सूरतेहाल पेश आ जाए, मसलन— मुक़ाबले के मैदान से किसी भी हाल में न हटना। 'तादीब का असा न हटाओ' का मतलब मारना-पीटना नहीं है, बल्कि इससे मुराद असलन वह अख़्लाक़ी दबाव है, जो घर के अंदर नज़्म बरक़रार रखने के लिए ज़रूरी होता है, ताकि घर में अराजकता (anarchy) का माहौल क़ायम न हो।

61

हुजैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि निफ़ाक़ (hypocrisy) रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में था। अब आज या तो कुफ़्र है या ईमान। (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7,114)

इस रिवायत में निफ़ाक़ या मुनाफ़क़त से मुराद वह किरदार है, जो शुब्हा की नफ़्सियात में मुब्तला हो और इस बिना पर वह मुख़्लिसाना ईमान के दर्जे तक न पहुँच सके। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में इस्लाम अपने इब्तिदाई दौर में था। नज़रिया व अमल के एतिबार से वह इस तरह मुस्तहकम नहीं हुआ था, जिस तरह वह आपके बरपा-कर्दा इंक़लाब के बाद हुआ। इसलिए इब्तिदाई दौर में कमज़ोर अफ़राद के लिए इस शुब्हा की गुंजाइश हो सकती थी कि यह वाक़ई सदाक़त है या नहीं, मगर बाद के ज़माने में जब इस्लाम नज़री और अमली दोनों एतिबार से क़ायम और मुस्तहकम हो गया, तो उसके बाद यह गुंजाइश न रही कि कोई शख़्स उसकी सदाक़त के बारे में शुब्हा कर सके। अब इंसान के लिए शुब्हा का इमकान ख़त्म हो गया। अब उसके लिए सिर्फ़ दो में से एक का इंतिख़ाब बाक़ी रहा— पूरी तरह इनकार या पूरी तरह इक़रार।

इस रिवायत में मुनाफ़िक़ का क़ानूनी हुक्म नहीं बताया गया है, बल्कि उसकी वह हैसियत बताई गई है, जो उसकी अल्लाह के नज़दीक है। इस रिवायत का मक़सद सिर्फ़ यह है कि इस्लाम के इब्तिदाई दौर में किसी शख़्स को शुब्हा का फ़ायदा (benefit of doubt) मिल सकता था, मगर जब इस्लाम हर एतिबार से एक वाज़ेह और साबित-शुदा हक़ीक़त बन गया, तो अब अल्लाह के यहाँ किसी को शुब्हा की रिआयत नहीं मिलेगी। अब अगर कोई शख़्स इस्लाम की सदाक़त पर शुब्हा करे, तो वह अल्लाह के नज़दीक एक ऐसा इंसान क़रार पाएगा,

जिसने तमाम दलाइल व हक़ाइक़ सामने आने के बावजूद ख़ुदा के दीन के साथ मुख़्लिसाना ताल्लुक़ क़ायम नहीं किया।

62

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "अल्लाह ने मेरी उम्मत से उन वसवसों को माफ़ कर दिया है, जो उनके दिलों में गुज़रें। जब तक वे इस पर अमल न करें या उसे ज़ुबान पर न लाएँ।"

(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 2,528; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 127)

इस हदीस का मतलब यह नहीं है कि उम्मत-ए-मुहम्मदी पर वसवसों की पकड़ नहीं है, जबकि इससे पहले की उम्मतों का मामला ऐसा न था। हक़ीक़त यह है कि वसवसे पर पकड़ न होना, बल्कि अमल पर पकड़ होना, यह अल्लाह का आम क़ानून है। इसका ताल्लुक़ हर दौर के तमाम इंसानों से है। हदीस के मज़्कूरा अल्फ़ाज़ का अंदाज़ वह है, जो मुख़ातब की निस्बत से इख़्तियार किया गया है। इसमें यह बात अपने आप मफ़हूम (understood) है कि जिस तरह पिछली उम्मतों के लिए वसवसे पर पकड़ नहीं थी, उसी तरह मेरी उम्मत के लिए भी वसवसे पर पकड़ नहीं।

63

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि सहाबा में से कुछ लोग रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास आए। उन्होंने पूछा कि हम अपने दिलों में ऐसी बात पाते हैं, जिसे ज़ुबान पर लाना हमें बहुत ज़्यादा संगीन मालूम होता है। आपने फ़रमाया कि क्या तुम ऐसा पाते हो? उन्होंने कहा कि हाँ! आपने फ़रमाया कि यह तो खुला हुआ ईमान है। (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 132)

ईमान नफ़्सानी वसवसों के साथ एक मुसलसल जंग है। मोमिन वह है, जो वसवसों को दबाए, न कि ख़ुद इनसे दब जाए। नफ़्सानी वसवसों को इस हद तक बुरा समझना कि उन्हें ज़ुबान पर लाना भी आदमी को गवारा न हो, यह ख़ुद ईमान की एक यक़ीनी हालत है।

64

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "शैतान तुममें से किसी शख़्स के पास आता है और (उसके ज़ेहन में) यह सवाल पैदा करता है कि फ़ुलाँ चीज़ को किसने पैदा किया, फ़ुलाँ चीज़ को किसने पैदा किया, यहाँ तक कि वह कहता है कि तुम्हारे रब को किसने पैदा किया? जब ऐसा हो, तो आदमी को चाहिए कि वह अल्लाह से पनाह माँगे और इससे रुक जाए।"

(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3,276; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 134)

यह भी इल्म है कि आदमी इल्म की हद को जाने यानी वह इस हक़ीक़त को जाने कि मैं क्या जान सकता हूँ और वह क्या चीज़ है, जिसे अपनी महदूदियत की बिना पर मैं नहीं जान सकता, मसलन— आदमी यह जान सकता है कि दरख़्त बीज से निकला और पानी दो गैसों के मिलने से बना, मगर ख़ुद बीज और गैस की इब्तिदा कैसे हुई, उसे जानना इंसान के लिए मुमकिन नहीं। इंसानी तारीख़ अपनी तमामतर इल्मी दरयाफ़्तों के बावजूद जहाँ तक पहुँची है या पहुँच सकती है, वह सिर्फ़ यह है कि वह किसी भी मौज़ू पर सिर्फ़ ना-मुकम्मल इल्म दे सके। मॉडर्न साइंस के हवाले से इस वाक़ये को जे.डब्ल्यू.एन. सलीवन (J.W.N. Sullivan) ने इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है—

साइंस से इंसान को हक़ीक़त का सिर्फ़ जुज़ई इल्म हासिल होता है।

Science gives us but a partial knowledge of reality.
(Limitations of Science, London, 1983, p. 182)

यह एक हक़ीक़त है कि मुकम्मल इल्म तक पहुँचने की राह में इंसान की ज़ाती महदूदियत फ़ैसला-कुन तौर पर रुकावट है। अपनी इसी महदूदियत की बिना पर इंसान ख़ुदा के तख़्लीक़ी मज़ाहिर को तो जान सकता है, मगर ख़ुदा के वजूद की वुसअतों का इहाता करना इंसान के लिए हरगिज़ मुमकिन नहीं।

65

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "लोग एक-दूसरे से सवाल करते रहेंगे, यहाँ तक कि यह कहा जाएगा कि यह मख़्लूक़ है, जिसे ख़ुदा ने पैदा किया। फिर ख़ुदा को किसने पैदा किया? बस जो शख़्स अपने दिल में इस क़िस्म का कोई ख़याल पाए, तो वह कहे कि मैं ईमान लाया अल्लाह पर और उसके रसूलों पर।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7,296; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 134)

इंसानी ग़ौर-ओ-फ़िक्र का एक मालूम दायरा है और दूसरा उसका ना-मालूम दायरा। दानिशमंद वह है, जो अपने मालूम दायरे में तो कुल्ली इल्म तक पहुँचने की पूरी कोशिश करे, मगर उसका ना-मालूम दायरा आ जाए, तो वह जुज़ई इल्म पर राज़ी हो जाए। मालूम दायरे में मुकम्मल इल्म तक पहुँचने की कोशिश करना एक अच्छा काम है, मगर ना-मालूम दायरे के लिए यह मतलूब है कि आदमी बिल-वास्ता (indirect) इल्म पर क़नाअत करे। यही इस दुनिया में अमली नुक़्ता-ए-नज़र है और यही वह नुक़्ता-ए-नज़र है, जिसे मौजूदा ज़माने में साइंटिफिक नुक़्ता-ए-नज़र कहा गया है।

66

अब्दुल्लाह इब्न मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "तुममें से हर शख़्स के ऊपर उसका एक साथी मुक़र्रर कर दिया जाता है, जिन्नात में से और फ़रिश्तों में से। लोगों ने कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल, क्या आपके साथ भी? आपने फ़रमाया कि हाँ, मेरे साथ भी, लेकिन ख़ुदा ने मुझे उसके ऊपर मदद दी, तो उसने इस्लाम क़ुबूल कर लिया, बस वह मुझे हमेशा भलाई का मशवरा देता है।" (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 69)

इस हक़ीक़त को क़ुरआन में 'नफ़्स-ए-अम्मारा' (12:53) और 'नफ़्स-ए-लव्वामा' (75:2) के अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है। हर आदमी के अंदर ब-यक-वक़्त दो मुख़्तलिफ़ क़ुव्वतें मौजूद हैं। एक नफ़्सानी क़ुव्वत, जो हर मौक़े पर आदमी के अंदर मनफ़ी नफ़्सियात जगाती है और उसे बुरे काम पर उभारती है। इसी के साथ हर आदमी के अंदर ज़मीर की ताक़त है, जो हर मौक़े पर उसके अंदर मुस्बत एहसासात जगाती है। आदमी अगर ऐसा करे कि जब उसके अंदर नफ़्सानी मुहर्रिकात जागें, तो वह अपनी सोच को भी उसी के मुताबिक़ चलाने लगे। ऐसी हालत में धीरे-धीरे उसका ज़ेहन उसके नफ़्स के ताबे हो जाएगा। इसके बरअक्स अगर वह ज़मीर की आवाज़ पर ध्यान दे और अपने ज़ेहन को उसके ताबे बनाए, तो उसका ज़मीर उसका रहनुमा बन जाएगा, जो हर मौक़े पर उसे ख़ैर का मशवरा दे।

67

अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "शैतान आदमी के अंदर इस तरह दौड़ता है, जैसे ख़ून उसके अंदर दौड़ता है।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3,281; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 23)

इस हदीस में ख़ून की मिसाल से बताया गया है कि शैतान किसी आदमी के अंदर किस तरह तेज़ी के साथ अपना अमल करता है। यह मामला ख़ुदा ने इंसान के इम्तिहान के लिए किया है। इंसान को शैतान के साथ मुसलसल फ़िक्री मुक़ाबला करना है। इसी फ़िक्री मुक़ाबले के दौरान यह साबित होता है कि कौन शख़्स इस दुनिया में हक़ पर क़ायम रहा और कौन हक़ के रास्ते से हट गया।

68

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "बनी आदम के यहाँ जब भी कोई बच्चा होता है, शैतान उसे ज़रूर छूता है। शैतान के इसी छूने की वजह से पैदाइश के वक़्त बच्चा चीख़ता है, सिवा मरयम और उनके फ़रज़ंद के।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3,431; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 146)

इस हदीस में एक फ़ितरी हक़ीक़त को तम्सील की ज़ुबान में बयान किया गया है। इसका मतलब यह है कि इंसान पैदा होते ही शैतान की ज़द में आ जाता है और फिर अपनी सारी उम्र वह उसके ज़ेर-ए-असर रहता है। इस मामले में आदमी को इतना ज़्यादा चौकन्ना रहना चाहिए कि पैदाइश के वक़्त अगर वह बच्चे के चीख़ने की आवाज़ सुने, तो उसे याद आए कि इस दुनिया में इंसान को शैतान से बचने के लिए कितना ज़्यादा एहतिमाम करना है।

69

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "पैदाइश के वक़्त बच्चे की चीख़ शैतान की छेड़ से होती है।" (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2,367)

यह हदीस तम्सील की ज़ुबान (symbolic language) में है। इस हदीस का रुख़ बच्चे से ज़्यादा बड़ों की तरफ़ है। इसका मक़सद यह है

कि पैदाइश के वक़्त जब आदमी बच्चे की चीख़ को सुने, तो वह शैतान के मामले को याद करे और शैतान से बचाव के लिए मज़ीद शिद्दत के साथ सरगर्म हो जाए।

70

जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "इबलीस अपना तख़्त पानी के ऊपर रखता है। फिर वह अपने दस्तों को भेजता है, ताकि वे लोगों को फ़ित्नों में मुब्तला करें। फिर दर्जे के एतिबार से शैतान का सबसे ज़्यादा क़रीब वह होता है, जिसने सबसे ज़्यादा बड़ा फ़ित्ना बरपा किया हो। उनमें से एक वापस आता है और शैतान से कहता है कि मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया, तो शैतान कहता है कि तुमने कुछ नहीं किया। आपने फ़रमाया कि फिर उनमें से एक आता है और कहता है कि मैंने फ़लाँ शख़्स को नहीं छोड़ा, जब तक कि मैंने उसके और उसकी बीवी के दरमियान जुदाई डाल दी। आपने फ़रमाया कि शैतान उसे अपने क़रीब करता है। फिर वह उससे कहता है कि हाँ, तुम। आ'मश (रावी) कहते हैं कि मेरा ख़याल है कि रिवायत करने वाले ने यह कहा था—

"वह उसे अपने से चिमटा लेता है।"

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 67)

यह हदीस भी ग़ालिबन तम्सील की ज़ुबान में है। यह एक उस्लूब कलाम है, जिसके ज़रिये आदमी को शैतानी फ़ित्नों से ख़बरदार किया गया है। जो शख़्स दो फ़र्द या दो गिरोह के दरमियान तफ़रीक़ डाले, वह गोया शैतान का काम कर रहा है और जो लोग तफ़रीक़ में मुब्तला हों, उन्हें जानना चाहिए कि वे शैतान की सबसे ज़्यादा तबाहकुन साज़िश का शिकार हो गए।

डायरी, 1986

17 फ़रवरी, 1986

अयोध्या में 32 हज़ार हिंदू आबादी है और मुसलमान तक़रीबन साढ़े सात हज़ार हैं। यह मंदिरों का शहर है। चुनाँचे यहाँ 4,932 मंदिर हैं। यहाँ एक क़दीम मस्जिद है, जो मुसलमानों के दरमियान बाबरी मस्जिद के नाम से मशहूर है। ताहम हिंदुओं का कहना है कि यह 'राम-जन्मभूमि' है। यह इमारत अंग्रेज़ी दौर से विवादित रही है। 1949 में एक फ़साद हुआ और इसके बाद बाबरी मस्जिद बंद कर दी गई। इसके बाद मुक़दमा चलता रहा और अब भी इसका केस अदालत में मौजूद है। ताहम तालाबंदी के 37 साल बाद जनवरी, 1986 में डिस्ट्रिक्ट जज के.ऐम. पांडे के एक फ़ैसले के तहत उसका ताला तोड़ दिया गया और यह इमारत हिंदुओं के हवाले कर दी गई। (मुख़्तलिफ़ मराहिल से गुज़रते हुए 9 नवंबर, 2019 को इंडियन सुप्रीम कोर्ट ने हिंदुओं के हक़ में फ़ैसला दिया और इस तरह अब यह मसला अमलन ख़त्म हो चुका है।)

हिंदुओं की तरफ़ से मुक़दमा मिस्टर उमेशचंद पांडे ने लड़ा, जो एक ग़ैर-मारूफ़ वकील थे, मगर इस कामयाबी ने उन्हें अचानक ग़ैर-मामूली शोहरत दे दी। 'हिंदुस्तान टाइम्स' 16 फ़रवरी, 1986 को इस मौज़ू पर एक मुफ़स्सिल रिपोर्ट शाया की है। तब्सिरा-निगार मज़्कूरा वकील का ज़िक्र करते हुए लिखते हैं—

...And virtually overnight this quite obscure advocate made headlines and became the darling of Ayodhya's hindu majority.

बाबरी मस्जिद की अहमियत यह थी कि वह दो हरीफ़ क़ौमों के लिए प्रेस्टीज शो बन गई। इस क़िस्म की चीज़ों में जो लोग हिस्सा लेते हैं, वे ख़्वाह कामयाब हों या नाकाम, हर हाल में अचानक शोहरत

हासिल कर लेते हैं। इन चीज़ों में हिस्सा लेने का मुहर्रिक शख़्सी तरक़्क़ी होती है, न कि क़ौमी तरक़्क़ी।

18 फ़रवरी, 1986

कलीम उल्लाह ख़ान एम.एससी. (श्रीनगर) अपने एक साथी के हमराह मिलने के लिए आए। उन्होंने बताया कि 14 फ़रवरी, 1986 को जुमा की नमाज़ उन्होंने चाँदनी चौक की सुनहरी मस्जिद में पढ़ी। यह बाबरी मस्जिद के सिलसिले में एहतिजाज का दिन था। मस्जिद में एक साहब तक़रीर करने के लिए खड़े हुए। उन्होंने निहायत पुरजोश अंदाज़ में कहा कि हमारी मस्जिदों पर क़ब्ज़ा किया जा रहा है। इस वक़्त मुसलमानों को सिर पर कफ़न बाँधकर निकल पड़ना चाहिए, मगर मुझे ताज्जुब है कि मुसलमान बे-हिस बने हुए हैं। उन्होंने मस्जिद के नमाज़ियों की तरफ़ इशारा करते हुए कहा कि मुझे अफ़सोस है कि 'यौम-ए-एहतिजाज़' की रिआयत से आज आपने इतना भी नहीं किया कि अपने हाथों पर काली पट्टी बाँध लें। इतने सारे मुसलमान यहाँ जमा हैं, मगर कोई काली पट्टी बाँधे हुए नज़र नहीं आता। आप लोगों की ग़ैरत आख़िर कहाँ चली गई।

कलीम उल्लाह साहब ने कहा कि मौसूफ़ की पुरजोश तक़रीर के बाद मैंने यह जानना चाहा कि मुक़र्रिर साहब ने ख़ुद काली पट्टी बाँधी है या नहीं। मैंने बहुत ग़ौर से देखा, मगर उनके हाथ पर या जिस्म पर कहीं काली पट्टी नज़र नहीं आई। कलीम उल्लाह ख़ान साहब ने अपने पास बैठे एक साहब से कहा कि मुक़र्रिर साहब के हाथ पर काली पट्टी तलाश कर रहा हूँ, मगर कहीं नज़र नहीं आ रही है। उस आदमी ने जवाब दिया कि वे काली पट्टी क्या बाँधेंगे, वे हिंदुओं के ख़िलाफ़ तक़रीर कर रहे हैं कि उन्होंने बाबरी मस्जिद पर क़ब्ज़ा कर लिया है और ख़ुद यह हाल है कि इसी सुनहरी मस्जिद के एक हिस्से पर वे क़ब्ज़ा किए हुए हैं और किसी क़ीमत पर भी छोड़ने के लिए राज़ी नहीं।

मौजूदा ज़माने में अकसर मुस्लिम लीडरों का यही हाल है। वे झूठी तक़रीरें करने में मशग़ूल हैं। वे दूसरों से ऐसा मुतालिबा कर रहे हैं, जिस पर वे ख़ुद अमल करने के लिए तैयार नहीं। यही वजह है कि हर तरफ़ लीडरी की धूम मची हुई है, मगर कहीं भी कोई नतीजा नज़र नहीं आता।

19 फ़रवरी, 1986

'अल-रिसाला' के एक क़ारी ने कहा कि 'अल-रिसाला' में इस्लामी मर्कज़ का जो ख़बरनामा होता है, वह मेरे नज़दीक इस्लामी मर्कज़ का तारीफ़नामा है। यह अपनी तारीफ़ आप के (self-praise) हम-मअना है। मैंने कहा कि ख़बरनामा में जो बातें दर्ज होती हैं, उन्हें आप हक़ीक़ी वाक़या समझते हैं या फ़र्ज़ी ख़बर? उन्होंने कहा कि मैं उन्हें हक़ीक़ी वाक़या समझता हूँ। मैंने कहा कि जब ये बातें हक़ीक़ी वाक़या हैं, तो फिर उनके ज़िक्र करने पर आपको क्या एतराज़ है?

फिर मैंने कहा कि आपकी तनक़ीद की वजह वह नहीं है, जो आप अपने लफ़्ज़ों में ज़ाहिर कर रहे हैं। आप उसे एक उसूली तनक़ीद समझ रहे हैं, मगर यह सिर्फ़ एक ग़ैर-ज़िम्मादाराना इज़्हार-ए-राय है। इसकी असल वजह यह है कि आपको 'इस्लामी मर्कज़' के साथ मिशन वाली वाबस्तगी नहीं। आप 'अल-रिसाला' के क़ारी हैं, मगर आप 'अल-रिसाला' की तहरीक के हमदर्द नहीं। यही वजह है कि आप इस तरह की बातें फ़रमा रहे हैं। अगर आपको इस मिशन से फ़िल-वाक़ेअ क़कल्बी लगाव होता, तो आप ख़बरनामा को 'रफ़्तार कार' ('अल-रिसाला' मिशन की सरगर्मियों) के मअना में लेते और फिर जब आप उसे पढ़ते, तो आपको यह मालूम करके ख़ुशी होती कि इस मिशन का दायरा फैल रहा है और वह लोगों के दिलों में अपनी जगह बना रहा है, मगर चूँकि आपको इससे कोई तहरीकी दिलचस्पी नहीं, इसलिए आप इसे रफ़्तारकार के अंदाज़ में न देख सकें। आपने उसे सिर्फ़ तारीफ़ के अंदाज़

में देखा। यही वजह है कि जो चीज़ महज़ हक़ीक़त-ए-वाक़या का इज़्हार थी, वह आपको ग़ैर-ज़रूरी तौर पर काबिल-ए-एतराज़ दिखाई देने लगी। यही हाल तमाम मामलात का है। अकसर ग़लतफ़हमियाँ या एतराज़ महज़ देखने वाले की नज़र के फ़र्क़ का नतीजा होता है। अगर ज़ाविया-ए-नज़र बदल जाए, तो आदमी की राय भी यक़ीनी तौर पर दूसरी हो जाएगी।

20 फ़रवरी, 1986

आज की डाक से एक किताब मौसूल हुई। उसका नाम है— 'अल-तरबिया फ़िल याबान अल-मुआसरह' (मुतर्जिम : मोहम्मद अब्दुल अलीम मूसा, 1985, सफ़हात 68)

यह एडवर्ड आर. बूशांब (Edward R. Beauchamp) की एक किताब का अरबी तर्जुमा है, जिसका असल नाम यह है— Education in Contemporary Japan

इस किताब का अरबी तर्जुमा रियाज़ (सऊदी अरब) के एक इदारे ने शाया किया है। इस किताब में बताया गया है कि दूसरी जंग-ए-अज़ीम के मौक़े पर जापानियों में ज़बरदस्त फ़ौजी ज़हन पाया जाता था। वे अपने क़ौमी मसाइल का हल फ़ौजी कारवाइयों में समझते थे, मगर जब अमरीका ने जापान के ऊपर दो एटम बम गिराए और जापान की ताक़त बिलकुल तहस-नहस हो गई, तो अचानक जापानियों ने अपनी सोच को बदल लिया। पूरी क़ौम इस बदले हुए रुख़ पर चल पड़ी, जिसे उसके मुफ़क्किरीन ने 'अल-इत्तिजह अल-मुआकस' यानी रिवर्स कोर्स (reverse course) का नाम दिया है। दूसरे अलफ़ाज़ में, हिंसात्मक तरीक़े को छोड़कर पुर-अम्न तामीर का तरीक़ा इख़्तियार करना। यही मौजूदा दुनिया में तरक़्क़ी का सबसे बड़ा राज़ है। फ़र्द हो या क़ौम हर एक की ज़िंदगी में बार-बार ऐसे लम्हात आते हैं कि इसका

साबिक़ा तरीक़ा बदले हुए हालात के एतिबार से बेफ़ायदा हो जाता है। यह लम्हा किसी शख़्स या क़ौम के लिए सबसे ज़्यादा नाज़ुक इम्तिहान होता है। मुर्दा लोग अपने साबिक़ा तरीक़े पर बाक़ी रहते हैं, यहाँ तक कि वे हलाक हो जाते हैं और जो ज़िंदा लोग हैं, वे फ़ौरन अपना रास्ता तब्दील कर देते हैं। वे नए रास्ते से अपनी मंज़िल तक पहुँच जाते हैं, जहाँ वे पिछले रास्ते से पहुँचने में कामयाब नहीं हुए।

21 फ़रवरी, 1986

पिछले जुमा यानी 14 फ़रवरी, 1986 को एक मस्जिद में नमाज़ पढ़ने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। एक साहब ने जुमा से पहले निहायत पुरजोश तक़रीर की और जुमा में क़ुनूत-ए-नाज़िला भी पढ़ी गई। मुक़र्रिर ने गरजदार आवाज़ में कहा था कि बाबरी मस्जिद (अयोध्या) का मसला हमारे लिए ज़िंदगी और मौत का मसला है। हम किसी हाल में भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते, ख़्वाह हमारी गरदनें काटी जाएँ या हमारे जिस्मों पर टैंक चला दिए जाएँ वग़ैरह-वग़ैरह, मगर पिछले जुमा को भी इस पुरजोश तक़रीर के बाद और कुछ न हो सका। मुक़र्रिर ने ऐलान किया था कि तमाम नमाज़ी नमाज़ के बाद मस्जिद के बाहर मैदान में जमा हो जाएँ और जुलूस की शक्ल में बोट कलब चलें। नमाज़ के बाद मुक़र्रिर साहब को क़रीब के थाने में बुलाया गया और थानेदार ने कहा कि आपको मालूम है कि बोट कलब के इलाक़े में दफ़ा 144 लगी हुई है। फिर आप कैसे वहाँ जलूस ले जाएँगे? आप सिर्फ़ यह कर सकते हैं कि चंद आदमी अपना मुतालिबा लिखकर ले जाएँ और वहाँ पुलिस अफ़सर को दे दें। इसके बाद मुक़र्रिर साहब की हिदायत पर तमाम नमाज़ी वापस चले गए और मुतालिबा (memorandum) इसलिए पेश न किया जा सका कि वे सारे जोश-ओ-ख़रोश के बावजूद लिखा नहीं गया था। आज के जुमा में भी नमाज़ियों की तादाद मामूली से ज़्यादा थी। ताहम न मुजाहिद नौजवानों के हाथ पर काली पट्टियाँ बँधी हुई थीं और न कोई

पुरजोश तक़रीर हुई। साबिक़ मुक़र्रिर ने दोबारा ऐलान किया कि आप लोग नमाज़ से फ़ारिग़ होने के बाद ख़ामोशी से अपने अपने घरों को चले जाएँ और बस अल्लाह से दुआ करते रहें। आज पिछले जुमा के बरअक्स क़ुनूत-ए-नाज़िला भी नहीं पढ़ी गई।

यही मौजूदा ज़माने में मुसलमानों की आम हालत है। वे पुरजोश तक़रीरें करते हैं, जबकि अमल का कोई वाक़ई मंसूबा उनके ज़ेहन में नहीं होता। वे बड़े-बड़े इक़दाम की बातें करते हैं, जबकि वे अपने मुद्दे को ऐसे अंदाज़ में क़लम-बंद किए हुए नहीं होते, जिसे वे किसी ज़िम्मेदार के सामने पेश कर सकें। इसी क़िस्म की रविश की तरफ़ सहाबी-ए-रसूल इब्न मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु ने इन अल्फ़ाज़ में इशारा किया है—

سَيَأْتِي مِنْ بَعْدِكُمْ زَمَانٌ قَلِيلٌ فُقَهَاؤُهُ كَثِيرٌ خُطَبَاؤُهُ.

"अन-क़रीब तुम्हारे बाद वह ज़माना आएगा, जबकि समझ-बूझ रखने वाले कम होंगे और तक़रीर करने वाले ज़्यादा।"
(अल-अदब अल-मुफ़रद, अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 789)

22 फ़रवरी, 1986

एक सख़्त तजुर्बा गुज़रा। इसके बाद मेरी ज़ुबान पर ये अल्फ़ाज़ थे—इस दुनिया में कभी अपने जायज़ हक़ से दस्त-बरदार होना पड़ता है, ताकि अपना हक़ ज़्यादा ताक़त के साथ साबित किया जा सके। इस दुनिया में कभी बुराई के आगे झुकना पड़ता है, ताकि बुराई को ख़त्म करने के लिए राह खोली जा सके।

यह दुनिया सब्र का इम्तिहान है। इस दुनिया में आदमी को मुस्तक़बिल की ख़ातिर माज़ी और हाल को भूलना पड़ता है। यहाँ आदमी को छोड़ना पड़ता है, ताकि वह दोबारा पाने वाला बन सके। यहाँ रुकना पड़ता है, ताकि अज़-सर-ए-नौ आगे बढ़ने का रास्ता खुले। यहाँ चुप होना पड़ता है, ताकि आदमी को बोलने के लिए अल्फ़ाज़

मिल सकें। यह दुनिया खोकर पाने की जगह है। यहाँ एराज़ करके आगे बढ़ना पड़ता है। यहाँ देना पड़ता है, ताकि दोबारा इज़ाफ़े के साथ वसूल किया जा सके।

23 फ़रवरी, 1986

नई दिल्ली के अंग्रेज़ी अख़बार 'हिंदुस्तान टाइम्स' (23 फ़रवरी, 1986) में 'भगवान रजनीश' पर एक नोट छपा है, जिसका उनवान है— A Quiet Departure

रजनीश अमरीका से भागकर हिंदुस्तान आए। फिर वे काठमांडू (नेपाल) गए। इसके बाद वे चुपके से इटली के लिए रवाना हो गए। अख़बार ने उनके शागिर्दों से उनके बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा कि हमें उसकी बहुत ज़्यादा फ़िक्र नहीं, क्योंकि 'भगवान' हमें सेल्फ़-रियलाइज़ेशन (self-realization) का सबक़ देते हैं।

We are not followers. The bhagwan has only been helping in to be ourself.

In their words, to free us from following anything.

अचार्य रजनीश के एक शागिर्द ने कहा कि हत्ता कि जब भगवान मर जाएँगे, तब भी हमें किसी गुरु की ज़रूरत नहीं, क्योंकि हमने उन्हें टेप और वीडियो टेप पर रिकॉर्ड कर लिया है।

Even when bhagwan is gone, we won't need any priests, for we have him on tapes and the video tapes.

अचार्य रजनीश के ख़यालात को एहमियत न देते हुए उनके शागिर्द का यह जवाब ज़माने के फ़र्क़ को बताता है। क़दीम ज़माने की शख़्सियतों में पैग़ंबर-ए-इस्लाम की शख़्सियत के सिवा किसी भी शख़्स का कामिल रिकॉर्ड महफ़ूज़ नहीं, मगर मौजूदा ज़माने में यह मुमकिन हो

गया है कि किसी आदमी की आवाज़ और उसकी शख़्सियत इस तरह महफ़ूज़ कर ली जाए कि किसी भी वक़्त उसे दोहराया जा सके।

25 फ़रवरी, 1986

दूसरी जंग-ए-अज़ीम तक जापान के अंदर ज़बरदस्त जंगी मिज़ाज था, मगर दूसरी जंग-ए-अज़ीम (अगस्त, 1945) में जब जापान को शिकस्त हुई, तो वहाँ के विचारकों और लीडरों ने फ़ौरन जापान को दूसरा नारा दिया, जिसका नाम था— बरअक्स तरीक़ा (reverse course)। यह बरअक्स तरीक़ा इतना ज़बरदस्त कामयाब हुआ कि 40 बरस के बाद जापान की तारीख़ बदल गई।

मैंने एक तालीमयाफ़्ता मुसलमान से इसका ज़िक्र करते हुए कहा कि ज़िंदगी के सफ़र में यह एक बेहद फ़ैसलाकुन चीज़ है। ज़िंदगी के सफ़र में कभी इसकी ज़रूरत होती है कि अपने रुख़ को बिलकुल तब्दील कर दिया जाए। जंग करने वाला सुलह कर ले। आगे बढ़ने वाला पीछे हट जाए। जो अब तक बोल रहा था, वह ख़ामोशी इख़्तियार कर ले। मज़्कूरा मुसलमान ने यह सुनकर कहा कि जापान ने जो कुछ किया, उसकी मजबूरी थी। दूसरी जंग-ए-अज़ीम में शिकस्त के बाद जापान उसके सिवा और क्या कर सकता था, जो वह करता? मज़्कूरा मुसलमान के ये अल्फ़ाज़ ग्रामर के लिहाज़ से सही हैं, मगर मअनी के एतिबार से वे सरासर ग़लत हैं। मौजूदा ज़माने में मुसलमानों को हर महाज़ पर शिकस्त होती है। इसके बावजूद वे रिवर्स कोर्स की तदबीर न इख़्तियार कर सके। मुसलमान जहाँ बराह-ए-रास्त नहीं लड़ सकते, वहाँ बिल-वास्ता लड़ रहे हैं और जहाँ किसी क़िस्म की लड़ाई उनके लिए मुमकिन नहीं है, वहाँ लफ़्ज़ी तूफ़ान मचा रहे हैं। यह तरीक़ा जापान भी इख़्तियार कर सकता था, मगर उसने नहीं किया।

26 फ़रवरी, 1986

डॉक्टर अब्दुल्लाह साहब (बैंगलोर) मिलने के लिए तशरीफ़ लाए। वे 'अल-रिसाला' के क़ारी भी हैं और दस पर्चा मँगाकर तक़सीम करते हैं। उन्होंने कहा कि 'अल-रिसाला' के बाज़ पढ़ने वालों का कहना है कि 'अल-रिसाला' में तनक़ीद नहीं रहनी चाहिए।

मैंने कहा कि तनक़ीद तो किसी क़ौम की ज़िंदगी की अलामत है। सहाबा किराम आम तौर पर एक-दूसरे के ख़िलाफ़ सख़्त तनक़ीद करते थे, मसलन— हज़रत इब्न उमर ने एक बार हज़रत अबू हुरैरा के बारे में कहा كَذَبَ أَبُو هُرَيْرَةَ (क़ुबूल अल-अख़बार लेआबी कासिम बलख़ी, जिल्द 1, सफ़हा 183) यानी अबू हुरैरा ने झूठ कहा। इस जुमले को अगर ख़ालिस लफ़्ज़ी मअना में लिया जाए, तो इसका मतलब यह होगा कि अबू हुरैरा साक़ित अल-रिवाया हैं, क्योंकि जो शख़्स झूठ बोले, उससे रिवायत नहीं की जाती, मगर यह सिर्फ़ शिद्दत-ए-कलाम है। इससे अंदाज़ा होता है कि सहाबा किराम एक-दूसरे के ख़िलाफ़ तनक़ीद करने में कितने शदीद अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करते थे।

हदीस में आया है— मेरी उम्मत का इख़्तिलाफ़ रहमत है (अल-मक़ासिद अल-हसना, हदीस नंबर 39) इस हदीस में लोग इख़्तिलाफ़ को विभाजन के मअना में ले लेते हैं, इसलिए उन्हें उसकी वज़ाहत में सख़्त मुश्किल पेश आती है, हत्ता कि कुछ लोग यह साबित करना चाहते हैं कि सनद के एतिबार से यह रिवायत लेने के क़ाबिल नहीं है, मगर इस तकल्लुफ़ की कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि इस हदीस में इख़्तिलाफ़ का लफ़्ज़ विभाजन के मअना में नहीं है, बल्कि इख़्तिलाफ़-ए-राय (मतभेद) के मअनी में है। इसका मतलब है कि एक राय की जगह दूसरी राय को दलील के ज़रिये पेश करना है, न कि मुख़्तलिफ़ गिरोहों में बँटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाना।

यह एक हक़ीक़त है कि इख़्तिलाफ़-ए-राय की फ़िज़ा का होना किसी क़ौम के लिए रहमत है। जिस क़ौम में इख़्तिलाफ़-ए-राय होगा, उसके अंदर ठहराव (stagnation) नहीं होगा। अगर उनके अंदर कोई ग़लती वाक़ेअ होगी, तो वह तनक़ीद के ज़रिये अपनी इस्लाह करती रहेगी। किसी ग़लत रविश का बरक़रार रहना उसके अंदर नामुमकिन हो जाएगा। उसके अंदर यह ज़ेहन होगा कि चीज़ों को उनके जौहर (merit) की बुनियाद पर अहमियत दी जाए, न कि किसी और बुनियाद पर। मौजूदा दौर में साइंस की तरक़्क़ी इसी इख़्तिलाफ़ की बुनियाद पर हुई है। साइंसदानों के दरमियान इख़्तिलाफ़-ए-राय की अगर इजाज़त न होती, तो साइंस कभी तरक़्क़ी न करती।

27 फ़रवरी, 1986

डाक से मासिक पत्रिका 'मआरिफ़' (फ़रवरी, 1986) मिला। इसमें डॉक्टर मुहम्मद हमीदुल्लाह साहब का एक ख़त छपा है। इस ख़त में वे लिखते हैं—

"गुटेनबर्ग (फ़ौत : 1468) को प्रिंटिंग प्रेस का इजाद करने वाला माना जाता है। हाल में मुझे पता चला कि वियना (ऑस्ट्रिया) के कुतुबख़ाना-ए-आम में एक टुकड़ा क़ुरआन-ए-मजीद का मौजूद है, जो गुटेनबर्ग से पाँच सौ साल क़ब्ल सलजूक़ी दौर में (ग़ालिबन मिस्र में) छपा है और यह तारीख़ अँगरेज़ रिसर्चरों ने बयान की है। ऑस्ट्रिया को फ़ौरन ख़त लिखकर उसका फ़ोटो मँगाया। वाक़ई काबिल-ए-दीद और काबिल-ए-ज़िक्र चीज़ है। मैं उसे अपने फ़्रांसीसी मुक़ाला 'तारीख़-ए-ख़त-ए-अरबी' में छाप रहा हूँ।"

5 जनवरी, 1986

इस तरह की कितनी चीज़ें होंगी, जो मुस्लिम अहद में पैदा हुईं, मगर आज उनका कहीं निशान नहीं मिलता। मुसलमानों को जब

उरूज हासिल हुआ, तो उन्होंने कहीं भी क़ौमों के निशानात को नहीं मिटाया, हत्ता कि उन्होंने यूनान के तरीक़-ए-इलाज को लिया, तो इसका नाम 'यूनानी इलाज' रखा, उसे इस्लामी इलाज नहीं कहा, मगर बाद के ज़माने में जब दूसरी क़ौमों को ग़लबा हासिल हुआ, तो उन्होंने बेदर्दी के साथ इस्लामी आसार को मिटाया। इसकी वजह ग़ालिबन यह है कि जो लोग फ़िल-वाक़ेअ हक़ के हामिल हों, उनके अंदर दरियादिली का मिज़ाज होता है और जो लोग ना-हक़ पर हों, वो निस्बतन तंगदिल हो जाते हैं। हक़-परस्त को इसकी ज़रूरत महसूस नहीं रहती कि वे दूसरों को मिटाकर अज़्मत हासिल करें, जबकि ग़ैर-हक़-परस्तों की नफ़्सियात होती है कि दूसरों को मंज़र से हटाए बग़ैर उन्हें अज़्मत हासिल नहीं हो सकती।

28 फ़रवरी, 1986

डॉक्टर इसरार अहमद साहब (लाहौर) फ़रवरी, 1980 में दिल्ली आए और हमारे यहाँ ठहरे। मैंने गुफ़्तुगू के दौरान कहा कि हिंदुस्तानी मुसलमानों के बारे में इक़बाल का अंदाज़ा बहुत ग़लत था। उनका शेर है—

नहीं है ना-उम्मीद इक़बाल अपनी किश्त-ए-वीराँ से,
ज़रा नम हो तो ये मिट्टी बड़ी ज़रख़ेज़ है साक़ी।

अगर इक़बाल का यह अंदाज़ा सही होता, तो अब तक इस 'मिट्टी' को ज़रख़ेज़ हो जाना चाहिए था, क्योंकि इक़बाल और दूसरे बहुत-से अकाबिर पिछले सौ बरस से इसे सिर्फ़ नम ही नहीं कर रहे हैं, बल्कि इस पर फ़ैज़ की मूसलाधार बारिश भी बरसा रहे हैं, इसके बावजूद आज तक यह ज़रख़ेज़ साबित न हो सकी।

डॉक्टर इसरार अहमद इक़बाल के बहुत मोतक़िद हैं। उन्होंने इक़बाल का दिफ़ा करते हुए कहा कि इक़बाल ने यह भी तो कहा है—

तेरे मुहीत में कहीं गौहर-ए-ज़िंदगी नहीं,
ढूँढ चुका मैं मौज-मौज देख चुका सदफ़-सदफ़।

अक़ीदतमंदी हक़ीक़त से किस क़दर बे-ख़बर रहती है, इसकी यह एक दिलचस्प मिसाल है। अगर इक़बाल के पहले शेर को लिया जाए, तो साबित होता है कि इक़बाल अपनी क़ौम का सही अंदाज़ा न कर सके और अगर उनके दोनों शेर ब-यक-वक़्त लिए जाएँ, तो उनकी शख़्सियत और ज़्यादा ना-क़ाबिल-ए-एतबार होती है, क्योंकि इससे साबित होता है कि इक़बाल तज़ाद-बयानी (conflicting statement) के शिकार थे। कभी कुछ कहते थे और कभी कुछ। जो कलाम इक़बाल की तज़ाद-फ़िक्री को साबित कर रहा था, वह अक़ीदतमंद के नज़दीक उनके मुश्किल होने का सबूत बन गया, मगर अक़ीदत के लिए यह कोई मसला नहीं। वह जब मुस्लिम क़ौम को ज़रख़ेज़ साबित करना चाहेगा, तो वह इक़बाल का पहला शेर पढ़ देगा और जब मुस्लिम क़ौम को ज़वालयाफ़्ता बताने की ज़रूरत होगी, तो वह दूसरा शेर पढ़ देगा। मुफ़क्किर की तारीफ़ इल्म की दुनिया में कुछ और है और अक़ीदतमंदी की दुनिया में कुछ और।

1 मार्च, 1986

एक साहब से मुलाक़ात हुई। उन्होंने इस्लाम का काफ़ी मुताला किया है। मैंने कहा कि अगर आपसे पूछा जाए कि इस्लाम का ख़ुलासा क्या है, तो आप क्या कहेंगे? उन्होंने जवाब दिया कि समर्पण (submission)। मैंने कहा कि आपने बिलकुल सही जवाब दिया। अब उसकी तफ़्सील बताइए। उन्होंने कहा कि ज़िंदगी के हर मामले में और शोबे में समर्पण, यही कामिल इस्लाम है।

मैंने कहा कि आपने शुरू में सही जवाब दिया, मगर उसके बाद आप भटक गए। यह सही है कि असल इस्लाम समर्पण है, मगर इससे मुराद आपका समर्पण है, न कि सियासत और निज़ाम का समर्पण। इस्लाम का असल मुख़ातब फ़र्द है। फ़र्द को समर्पित बनाना असल काम है, मगर आपकी तशरीह ने इस्लाम को दीन के बजाय सियासत बना दिया।

2 मार्च, 1986

आज जनाब अनवर अली बेग (लखनऊ) मिलने के लिए आए। वे इंजीनियर हैं। मैंने उनसे पूछा कि इस्लामियत में आपने क्या-क्या चीज़ें पढ़ी हैं? उन्होंने बताया कि वे मौलाना मौदूदी का बेशतर लिटरेचर पढ़ चुके हैं। 'तफ़हीमुल क़ुरआन' का भी मुताला किया है। उनकी गुफ़्तुगू से अंदाज़ा हुआ कि वे मौलाना मौदूदी की फ़िक्र से मुतास्सिर हैं। वे इक़बाल की भी काफ़ी तारीफ़ कर रहे थे। इक़बाल को उन्होंने अपना मेंटोर (mentor) बताया।

गुफ़्तुगू के दौरान उन्होंने कहा कि आपके सब्र की पॉलिसी से कुछ नहीं हो सकता। इस्लाम के तज्दीद (revival) के लिए हमेशा 'कर्बला' की ज़रूरत होती है। मैंने कहा कि कर्बला का रिज़ल्ट (नतीजा) बताइए कि क्या था? इसके जवाब में वे लंबी-चौड़ी तक़रीर करते रहे, जो असल सवाल से ग़ैर-मुताल्लिक़ थी। मैंने उन्हें याद दिलाया कि मैंने आपसे कर्बला का रिज़ल्ट दरयाफ़्त किया है। उन्होंने कहा कि कर्बला का रिज़ल्ट है— प्रिंसिपल (उसूल) पर समझौता न करना। मैंने कहा कि तारीख़ से यह रिज़ल्ट साबित नहीं होता। यह तो महज़ शायरी है— 'सर दाद मगर नादाद, दस्त दार दस्त यज़ीद', वरना असल हक़ीक़त यह है कि इमाम हुसैन ने आख़िरी लम्हे में बैअत की पेशकश कर दी थी। चुनाँचे तारीख़ में इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ इमाम हुसैन की तरफ़ मंसूब किए गए—

وَإِمَّا أَنْ أَضَعَ يَدِي فِي يَدِ يَزِيدَ.

मैं अपना हाथ यज़ीद के हाथ में रख दूँ।

(अंसाब अल-अशराफ़ लिल बलाज़ुरी, जिल्द 3, सफ़्हा 182)

इसके जवाब में वे तारीख़ के ग़ैर-मोतबर होने पर तक़रीर करने लगे। मैंने कहा कि कर्बला के न आप ग़ैबी शाहिद हैं और न इक़बाल।

ऐसी हालत में हमें तारीख़ ही पर तो भरोसा करना पड़ेगा। मेरा तजुर्बा यह है कि बेशतर लोगों की बात में सामंजस्य (consistency) नहीं होती। वे कभी कुछ कहते हैं और कभी कुछ। जबकि इल्मी गुफ़्तुगू उसका नाम है कि आदमी असल पॉइंट पर क़ायम रहकर बोले, वह इससे इधर-उधर न हटे।

3 मार्च, 1986

जनाब मुहम्मद मख़दूम साहब (किशनगंज, दिल्ली) मिलने के लिए आए। उन्होंने तब्लीग़ी जमात में चिल्ला लगाया है। उन्होंने बताया कि मौलाना मुहम्मद इलयास साहब कहते थे—

> "नीची नज़र, दिल में फ़िक्र, ज़ुबान पर ज़िक्र और क़दम मिलाकर चलोगे, तो मंज़िलें आसान हो जाएँगी।"

यह बहुत मोमिनाना बात है। ईमान अल्लाह की अज़्मतों के एहसास का नाम है। जो शख़्स अल्लाह की अज़्मतों के एहसास से बोझिल हो रहा हो, उसकी निगाह झुक जाएगी। उसका दिल सोच में डूब जाएगा। उसकी ज़ुबान अल्लाह को पुकारेगी और अल्लाह को याद करने लगेगी।

जिन लोगों के अंदर ये गहरे औसाफ़ पैदा हो जाएँ, वे उसके बाद लाज़िमी तौर पर इत्तिहाद और इत्तिफ़ाक़ के साथ रहने वाले हो जाते हैं। ऐसे लोगों से अना और सरकशी का जज़्बा छिन जाता है और जो लोग अना और सरकशी से ख़ाली हो जाएँ, उनके बाहमी इत्तिहाद में कोई रुकावट नहीं होती। जो लोग इस क़िस्म के ईमान व यक़ीन से सरशार हों और फिर वे बाहम मिलकर मुत्तहिद हो जाएँ, उनके लिए हर मंज़िल आसान है। कोई ताक़त उन्हें ज़ेर नहीं कर सकती, कोई मुश्किल उन्हें कामयाबी तक पहुँचने से नहीं रोक सकती।

4 मार्च, 1986

अफ़ज़ल अहमद एम.ए. (इटावा) मुलाक़ात के लिए तशरीफ़ लाए। वे इटावा में बिज़नस करते हैं। उन्होंने बताया कि वे मुक़ामी बुक सेलर के यहाँ से 'अल-रिसाला' ख़रीदकर पढ़ते हैं और 1978 से पढ़ रहे हैं। उन्होंने 'अल-रिसाला' की काफ़ी तारीफ़ की।

मैंने कहा कि 'अल-रिसाला' सिर्फ़ एक माहाना मैगज़ीन नहीं, वह एक मिशन है और मिशन का हक़ सिर्फ़ इतना ही नहीं होता कि आप उसकी तारीफ़ कर दें। मिशन चाहता है कि आप ख़ुद को उसमें शामिल (involve) करें। यही वजह है कि जब तक कोई शख़्स एजेंसी न ले, हमारे नज़दीक उसकी तारीफ़ क़ाबिल-ए-लिहाज़ नहीं। वे फ़ौरन एजेंसी लेने के लिए राज़ी हो गए।

ऐसे भी लोग हैं, जिन्होंने 'अल-रिसाला' की तारीफ़ की और मैंने उनसे मज़्कूरा बात कही, मगर वे एजेंसी लेने के लिए तैयार नहीं हुए। इंसानों में तरह-तरह के लोग होते हैं। किसी मिशन की कामयाबी का सबसे बड़ा राज़ यह है कि उसे जानदार अफ़राद मिल जाएँ। जानदार अफ़राद वे हैं, जो बात को फ़ौरन समझ लें और जो कुछ समझें, उस पर बिना देरी अमल करने के लिए आमादा हो जाएँ।

जदीद फ़िक्र

एक मशहूर आलिम ने एक मुख़्तसर किताब लिखी है। इसका नाम है— (ردة ولا أبا بكر لها)

इस किताब में जदीद मग़रिबी फ़िक्र के नतीजे में मज़हब के ख़िलाफ़ पैदा होने वाली बे-इत्मिनानी को मुर्तद होना कहा गया है। इस हक़ीक़त को जानने के लिए मैंने मग़रिबी तहज़ीब का मुताला किया और इस

क़िस्म के लोगों से मुलाक़ातें कीं। इसके बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जदीद दौर का केस इर्तिदाद का केस नहीं है, बल्कि वह ग़लतफ़हमी या बे-इत्मिनानी का केस है। मौलाना ने यह बात दौर-ए-जदीद की तालीम-गाहों के बारे में कही है। दौर-ए-जदीद की तालीम-गाहों में क्या सिखाया जाता है? मसलन— मशरिक़ी लोगों में इख़्तिलाफ़ का मतलब होता है— एक राय का सही होना और दूसरी राय का बातिल होना। इसकी वजह से मशरिक़ी क़ौमों में इख़्तिलाफ़-ए-राय लोगों की ज़ेहनी तरक़्क़ी का ज़रिया न बन सका।

इसके बरअक्स मग़रिबी लोगों में इख़्तिलाफ़-ए-राय के लिए डिसेंट (dissent) का तसव्वुर पाया जाता है यानी किसी राय को हक़ और बातिल के मेयार पर जाँचने के बजाय सिर्फ़ राय के एतिबार से देखना। इसका नतीजा यह हुआ कि उन्होंने हर चीज़ पर सवाल क़ायम किया, मसलन— बादल क्यों बरसते हैं, ज़मीन क्यों घूमती है वग़ैरह-वग़ैरह। इसी तरह उन्होंने मज़हब के ऊपर भी सवाल क़ायम किया, मसलन— यह कि ख़ुदा का वजूद कैसे मुमकिन है? मज़हब पर सवाल उठाने को अहले-मज़हब ने पसंद नहीं किया। इस वजह से उन्होंने जदीद तालीमयाफ़्ता लोगों के लिए इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किए, जिन्हें ऊपर बयान किया गया है।

यह सूरतेहाल का दुरुस्त तज्ज़िया नहीं था। मज़हब पर सवाल उठाने का मतलब यह था कि दौर-ए-जदीद के एतिबार से मज़हब के लिए दलाइल फ़राहम किए जाएँ। उलमा ने ऐसा नहीं किया, मगर मैंने अल्लाह के फ़ज़्ल से इस एतिबार से मुताला किया, तो मालूम हुआ कि जो इल्म हक़ीक़तन ईमानियत का इल्म था, वह अहले-मज़हब के नज़दीक ग़लतफ़हमी की बिना पर इर्तिदाद का इल्म हो गया। चुनाँचे मैंने जदीद साइंसी उलूम की रोशनी में कसीर तादाद में मक़ाले और किताबें लिखीं। उनमें से एक मशहूर किताब 'मज़हब और जदीद चैलेंज' है।

मुहासिबा-ए-नफ़्स क्या है?

मैमून बिन महरान ताबई (वफ़ात : 117) का क़ौल है—

لَا يَكُونُ الرَّجُلُ تَقِيًّا حَتَّى يَكُونَ لِنَفْسِهِ
أَشَدَّ مُحَاسَبَةً مِنَ الشَّرِيكِ لِشَرِيكِهِ.

"कोई इंसान मुत्तक़ी नहीं हो सकता, यहाँ तक कि वह अपने नफ़्स का इससे ज़्यादा शिद्दत के साथ मुहासिबा करने वाला न हो जाए, जितना कि कोई इंसान अपने बिज़नस पार्टनर का मुहासिबा करता।" (मुहासिबा अल-नफ़्स, इब्न अबी दुनिया : 7)

मुहासिबा क्या है? मसलन— जब भी किसी को ऐसा लगे कि उसके अंदर मनफ़ी एहसास (negativity) की ज़्यादती हो रही है, उसकी रब्बानियत (spirituality) में कमी महसूस हो रही है या उसके अंदर ख़ुदा से ताल्लुक़ (connection) का एहसास नहीं हो रहा है, तो उसे चाहिए कि वह फ़ौरन अपना जायज़ा ले। आख़िर उससे क्या कमी हो गई है, क्या ग़लती हो गई है? क्या बात है कि उसका अल्लाह तआला से कनेक्शन क़ायम नहीं हो पा रहा है।

अल्लाह तआला से कनेक्शन फ़रिश्तों के ज़रिये क़ायम होता है। ज़रा भी आदमी अगर नेगेटिव हो जाए, तो फ़रिश्ते पीछे हट जाते हैं, जैसा कि हज़रत अबू बक्र के वाक़ये से मालूम होता है। एक मर्तबा रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के साथ थे। एक आदमी आया और अबू बक्र को बुरा-भला कहने लगा। जब वह बुरा-भला कह रहा था, तो आप मुस्करा रहे थे। जब वह बहुत ज़्यादा बुरा-भला कहने लगा, तो अबू बक्र ने भी उसे कुछ जवाब दे दिया। रसूलुल्लाह ने जब अबू बक्र का रिएक्शन देखा, तो आप वहाँ से जाने लगे। यह देखकर हज़रत अबू बक्र आपकी तरफ़ बढ़े और पूछा— "ऐ

ख़ुदा के रसूल, जब उस आदमी ने मुझे बुरा-भला कहा, तो आप बैठे हुए थे, लेकिन जब मैंने उसका जवाब दिया, तो आप नाराज़ हो गए और वहाँ से उठकर जाने लगे। ऐसा क्यों?" आपने कहा, "जब वह बुरा-भला कह रहा था, तो फ़रिश्ते उसका जवाब दे रहे थे, लेकिन जब तुमने उसका जवाब दिया, तो फ़रिश्ते वहाँ से चले गए और शैतान वहाँ आ गया और जहाँ शैतान हो, वहाँ पर मैं नहीं बैठ सकता।" (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 9,624)

जब भी आपको अपनी ग़लती का एहसास हो, तो फ़ौरन तौबा कीजिए। फ़ौरन अपनी इस्लाह कीजिए। इंशा अल्लाह, दोबारा फिर ख़ुदा से कनेक्शन क़ायम हो जाएगा। —डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम

पैग़ंबर-ए-इस्लाम का नमूना

अता बिन यसार ताबई (वफ़ात : 103 हिजरी) बयान करते हैं कि मैंने साहबी-ए-रसूल अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन अल-आस रज़ियल्लाहु अन्हु से मुलाक़ात की और कहा कि आपने तौरात का मुताला किया है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की जो सिफ़ात तौरात में आई हैं, उनमें से कुछ बताइए। अब्दुल्लाह बिन अम्र ने जो कुछ कहा, उसका एक जुज़ यह कि है ख़ुदा की क़सम! आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की तौरात में बिलकुल बाज़ वही सिफ़ात आई हैं, जो क़ुरआन में मज़्कूर हैं, जैसे कि 'ए नबी! बेशक हमने तुमको गवाही देने वाला और बशारत देने वाला और डराने वाला बनाकर भेजा है और उम्मी (अनपढ़) क़ौम की हिफ़ाज़त करने वाला बनाकर भेजा है। तुम मेरे बंदे और मेरे रसूल हो। मैंने तुम्हारा नाम मुतवक्किल रखा है। तुम न बद-अख़्लाक़ हो, न सख़्त दिल और न बाज़ारों में शोरगुल मचाने वाले। वह बुराई का बदला बुराई से नहीं लेगा, बल्कि माफ़ और दरगुज़र करेगा।'

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 2,125)

पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की शख़्सियत और आपके मिशन को जानने के लिए यह एक अहम हदीस है। इस हदीस से रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की दो बुनियादी सिफ़ात मालूम होती हैं। एक, आप दाई-ए-इलल्लाह हैं और दूसरे, आप आख़िरी हद तक नो प्रॉब्लम पर्सन हैं। इस हदीस में बज़ाहिर रसूल की सिफ़ात बयान की गई हैं ,मगर वे हर इंसान के लिए रहनुमा उसूल की हैसियत रखती हैं। वे हर इंसान को आला इंसान बनने की तरफ़ रहनुमाई हैं।

हनफ़ी आलिम अहमद बिन इस्माईल अल-कुरानी (वफ़ात : 893) ने इसकी शरह करते हुए लिखा है कि इसमें इशारा है कि आप दीन, इंसानियत और अख़्लाक़ के एतिबार से कामिल थे। (अल-कौसर अल-जारी इला रियाज़ अहादीस अल-बुख़ारी, जिल्द 8, सफ़्हा 274)

मज़्कूरा हदीस में रसूलुल्लाह की सबसे पहली सिफ़त यह है—"ऐ नबी, बेशक हमने तुम्हें शाहिद और बशारत देने वाला और डराने वाला बनाकर भेजा है।" क़ुरआन में यह हक़ीक़त दो मुक़ामात (33:54, 48:8) पर बयान की गई है। मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब इसके तहत लिखते हैं कि शाह वली उल्लाह साहब ने शाहिद का तर्जुमा इज़्हार-ए-हक़ का नुमाइंदा (हक़ का इज़्हार करने वाला) किया है। यही इस लफ़्ज़ का सहीतरीन मफ़हूम है। पैग़ंबर का असल काम यह होता है कि वह हक़ीक़त का ऐलान-ओ-इज़्हार कर दे। वह वाज़ेह तौर पर बता दे कि मौत के बाद की अबदी ज़िंदगी में किन लोगों के लिए ख़ुदा का इनाम है। ऐसे एक शाहिद-ए-हक़ का खड़ा होना उसके मुख़ातबीन के लिए सबसे ज़्यादा सख़्त इम्तिहान होता है। उन्हें एक बशर की आवाज़ में ख़ुदा की आवाज़ को सुनना पड़ता है। एक आम इंसान को ख़ुदा के नुमाइंदे के रूप में देखना पड़ता है। एक इंसान के हाथ में अपना हाथ देते हुए यह समझना पड़ता है कि वे अपना हाथ ख़ुदा के हाथ में दे रहे हैं। जो लोग इस आला मारिफ़त का सबूत दें, उनके लिए ख़ुदा के यहाँ बहुत बड़ा अज्र है। (माख़ूज़, तज़्कीरुल क़ुरआन, 48:8)

"उम्मी क़ौम की हिफ़ाज़त करने वाला बनाकर भेजा है" में हिफ़ाज़त का मतलब सियासी हिफ़ाज़त नहीं है, बल्कि इससे मुराद वही हक़ीक़त है, जिसे क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

هُوَ الَّذِي بَعَثَ فِي الْأُمِّيِّينَ رَسُولًا مِّنْهُمْ يَتْلُو عَلَيْهِمْ آيَاتِهِ وَيُزَكِّيهِمْ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتَابَ وَالْحِكْمَةَ وَإِن كَانُوا مِن قَبْلُ لَفِي ضَلَالٍ مُّبِينٍ.

"वही है, जिसने उम्मियों के अंदर एक रसूल उन्हीं में से उठाया। वह उन्हें उसकी आयतें पढ़कर सुनाता है, उन्हें पाक करता है, उन्हें किताब और हिक्मत की तालीम देता है और वे इससे पहले खुली हुई गुमराही में थे।" (62:2)

दूसरे अल्फ़ाज़ में, तज़्किया, तालीम और हिक्मत के रास्ते से अफ़राद-ए-अरब की तर्बियत करना।

"मैंने तुम्हारा नाम मुतवक्किल रखा है" की शरह इब्न हिज्र ने इन अल्फ़ाज़ में की है—

"अल्लाह पर भरोसा करने वाले हैं, क्योंकि वे थोड़ी चीज़ पर क़नाअत करते हैं और ना-पसंदीदा चीज़ के मुक़ाबले में सब्र करते हैं।" (फ़तहुल बारी, जिल्द 8, सफ़्हा 586)

"तुम न बद-अख़्लाक़ हो, न सख़्त दिल और न बाज़ारों में शोरगुल मचाने वाले।" इसके तहत एक शारेह हदीस लिखते हैं कि वे नर्म-रौ, शरीफ़ुल हैं। वे बद-अख़्लाक़ नहीं कि लोगों पर चिल्लाएँ, न बद-तहज़ीब हैं कि बाज़ार में शोर मचाएँ, बल्कि लोगों के लिए नरम और ख़ैर-ख़्वाह हैं।

(शरह अल-तीबी, जिल्द 11, सफ़्हा 3,639)

“वह बुराई का बदला बुराई से नहीं लेगा”— इसकी वजह क्या है? इसकी वजह एक दूसरी हदीस में इस तरह बयान की गई है—

إِنَّ اللهَ عَزَّ وَجَلَّ لَا يَمْحُو السَّيِّئَ بِالسَّيِّئِ، وَلَكِنْ يَمْحُو السَّيِّئَ بِالْحَسَنِ، إِنَّ الْخَبِيثَ لَا يَمْحُو الْخَبِيثَ.

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 3,672)

यानी बेशक अल्लाह तआला बुराई को बुराई से नहीं मिटाता है, लेकिन बुराई को अच्छाई से मिटाता है। बेशक बुराई बुराई को ख़त्म नहीं करती है, इसीलिए क़ुरआन में कई मक़ाम पर बुराई को भलाई से ख़त्म करने की तरग़ीब दी गई है, मसलन— देखिए आयतें— 13:22, 23:96, 28:54, 41:34।

इस हदीस से जो सबक़ मिलता है, वह मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के अल्फ़ाज़ में यह है— ये तमाम हक़ाइक़ इस बात को साबित करते हैं कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम एक बा-उसूल इंसान थे। आपकी शख़्सियत हालात के रद्दे-अमल की पैदावार न थी, बल्कि आला रब्बानी उसूल की पैदावार थी। आपका आला अख़्लाक़ी सिफ़ात का हामिल होना, आपके इस दावे के ऐन मुताबिक़ है कि मैं ख़ुदा का रसूल हूँ। किसी भी समाज के लिए अच्छे अख़्लाक़ और आला किरदार की बहुत ज़्यादा अहमियत है। अफ़राद के अंदर अच्छे अख़्लाक़ का होना किसी समाज को अच्छा समाज बनाता है और अफ़राद के अंदर बुरे अख़्लाक़ का होना किसी समाज को बुरा समाज बनाता है। मारूफ़ उमवी ख़लीफ़ा उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (वफ़ात : 101 हिजरी) ने एक मर्तबा लोगों को यह नसीहत की थी—

أَيُّهَا النَّاسُ أَصْلِحُوا سَرَائِرَكُمْ تَصْلُحْ عَلَانِيَتُكُمْ.

“लोगो, अपने अंदरून को दुरुस्त करो, तुम्हारा ज़ाहिर दुरुस्त हो जाएगा।”

(अल-तबकात अल-कुबरा, इब्न साद, जिल्द 7, सफ़हा 386)

अख़्लाक़ दरअसल दाख़िली एहसास का ख़ारिजी इज़्हार है। दाख़िली सतह पर एक इंसान जैसा होगा, उसका असर उसके ख़ारिजी बरताव से ज़ाहिर होगा। आला अख़्लाक़ से मुराद वह अख़्लाक़ है, जबकि आदमी दूसरों के रवैये से बुलंद होकर अमल करे। उसका तरीक़ा यह न हो कि बुराई करने वालों का जवाब बुराई से दे और भलाई का जवाब भलाई से, बल्कि उसका तरीक़ा हर एक के साथ भलाई का हो। यह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का उस्वा-ए-हसन है, जिसे आपका उम्मती होने की हैसियत से हर मुसलमान को इख़्तियार करना चाहिए। —मौलान फ़रहाद अहमद

दावत का काम कैसे करें

(मिस्टर शाह ख़ालिद, सी.पी.एस. मिशन के एक नौजवान मेंबर हैं। इन्होंने रोज़मर्रा के दावती तजुर्बात की रोशनी में आम लोगों के लिए एक मुफ़ीद मज़मून लिखा है। यह गोया इस महीने का ख़बरनामा है। उम्मीद है कि अल्लाह हम सबको ज़्यादा-से-ज़्यादा दावत-ए-दीन की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए, आमीन!)

सी.पी.एस. मिशन से वाबस्ता अफ़राद के सामने हमेशा दो चीज़ें रहती हैं। पहले का ताल्लुक़ तज़्किया-ए-नफ़्स से है यानी कैसे वे अपने वजूद की फ़िक्री या रूहानी ततहीर करें? कैसे वे ख़ुद को डिस्ट्रेक्शन से बचाएँ और कैसे अपने ईमान में ईज़ाफ़ा कर सकें? एक रब्बानी इंसान इस मामले में इंतिहाई हस्सास होता है और यह उसका हर वक़्त का अमल बन जाता है कि वह बार-बार अपना मुहासबा करे, बार-बार रुजू इलल्लाह करे। अल्लाह तआला के हुज़ूर में अपने इज्ज़-ए-कामिल का एतिराफ़ करे। इसके मुक़ाबले में दूसरी चीज़ का ताल्लुक़ दावत-ए-दीन से है। कोई इंसान जब सच्चाई को दरयाफ़्त कर लेता है, तो यह उसके

लिए किसी ज़ाती तजुर्बे के हम-मअनी बन जाता है और वह बेताबी के साथ उठ खड़ा होता है कि जो चीज़ उसने पाई है, दूसरे लोग भी इसे पा सकें। जिस दर्जे में इंसान मारिफ़त-ए-ख़ुदावंदी पाता है, उसी दर्जे में उसके ऊपर यह ज़िम्मेदारी बढ़ती जाती है कि वह सच्चाई से दूसरे लोगों को आगाह करे। यह दाई का अल्लाह तआला के बंदों के साथ मोहब्बत का अमली ज़हूर होता है यानी जो सच्चाई उसकी ज़िंदगी में रब्बानी इंक़लाब का सबब बनी है, उसे वह दूसरों तक पहुँचाने की कोशिश करे, लेकिन अब एक आम आदमी की हैसियत से सवाल यह पैदा होता है कि हम दावत का काम कैसे करें, क्योंकि जहाँ तक ख़वास का ताल्लुक़ है, वे तो अपने दीनी इल्म की रोशनी में मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से यह काम करते रहते हैं। एक आम मुसलमान ख़्वाह वह तालिब-ए-इल्म हो या मुलाज़मत पेशा या तिजारत पेशा वग़ैरह, वह अपनी दीगर मसरूफ़ियात के साथ कैसे दावत का काम करे?

मेरे ख़याल में आम मुसलमानों के लिए दावती काम के दर्ज-ए-ज़ेल तरीक़े हो सकते हैं। वे इन तरीक़ों को अपनाकर अपनी घरेलू ज़िम्मेदारियों को मुतास्सिर किए बग़ैर दावत का काम अंजाम दे सकते हैं—

1. **व्हाट्सएप ग्रुप बनाना**— आजकल व्हाट्सएप हर किसी के मोबाइल फ़ोन में होता है। आदमी अपने सर्कल में (अहल-ओ-अयाल, फ़ैमिली मेंबर्स, कॉलेज-यूनीवर्सिटी फ़ेलोज़, कलीग्ज़ और दीगर मिलने-जुलने वाले वग़ैरह), जिन्हें वह तालिब (seeker) समझता हो, जो लिखने-पढ़ने से दिलचस्पी रखते हों या कम-से-कम उसे यह अंदाज़ा हो कि इस शख़्स को ग्रुप में एड करने पर वह एतराज़ नहीं करेगा। ऐसे लोगों को लेकर व्हाट्सएप ग्रुप्स बनाने चाहिए। उनमें रोज़ाना दो-तीन पोस्ट, जो मर्कज़ की तरफ़ से आती हैं, वह शेयर कर दी जाएँ। इसी तरह कोई शॉर्ट

पोस्ट या वीडियो क्लिप भी। मुनासिब है कि मर्द व ख़वातीन के लिए अलग-अलग ग्रुप बनाए जाएँ।

2. **व्हाट्सएप स्टेटस और फेसबुक पोस्ट**— व्हाट्सएप पर रोज़ाना स्टेटस लगाएँ और फेसबुक पर रोज़ाना कम-से-कम दो पोस्ट ज़रूर करें। बाज़ औक़ात एक छोटी-सी बात भी किसी की ज़िंदगी का रुख़ मोड़ने का पेश-ख़ेमा बन जाती है।

3. **व्हाट्सएप ब्रॉडकास्ट**— यह व्हाट्सएप का वह फ़ीचर है, जिससे आप ब-यक-वक़्त सैकड़ों लोगों को इनफ़िरादी हैसियत से मैसेज भेज सकते हैं। ग्रुप की बनिस्बत ब्रॉडकास्टिंग के ज़रिये भेजे जाने वाले मैसेज को ज़्यादा अहमियत मिलती है, क्योंकि वे आपके नाम से जाती है और लोगों को पता होता है कि यह चीज़ फ़लाँ शख़्स ने शेयर की है, तो ज़रूर पढ़ने वाली होगी। कोशिश कीजिए कि तहरीर मुख़्तसर और मेयारी हो। मैं कभी आम तहरीर इसमें शेयर नहीं करता, सिर्फ़ मेयारी तहरीर ही शेयर हों।

4. **घर का माहौल**— अल्लाह तआला ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह हुक्म दिया कि अपने सबसे क़रीबी रिश्तेदारों को ख़बरदार कीजिए (26:214)। इसलिए घर के अफ़राद को अपने दावती पैग़ाम से मानूस करना इंतिहाई ज़रूरी है। घरवालों को अपने अमल से यह अच्छी तरह अवेयर कराइए कि हमारा घराना दावती घराना है और इस वजह से हम दूसरों से मुख़्तलिफ़ हैं। हम आम लोगों की तरह बे-मक़सदियत और ज़ाहिरी नमूद-ओ-नुमाइश में ज़िंदगी नहीं गुज़ारेंगे। इससे मुमकिन है कि घर के माहौल में तब्दीली आए। फिर आप अकेले नहीं होंगे, बल्कि आपके बीवी-बच्चे भी आपके हम-ख़याल होंगे।

5. **रिश्तेदारों की लिस्ट मुरत्तब करना**— रिश्तेदारों और जानने वालों की बा-क़ायदा लिस्ट मुरत्तब करनी चाहिए, जिसमें उनकी तालीमी इस्तिदाद और दिलचस्पियों को मद्दे-नज़र रखकर उन्हें अपने माहाना बजट से किताबें हदिया दी जानी चाहिए। इस तरह किताबों का तबादला भी शुरू होगा, ताल्लुक़ात में भी बेहतरी आएगी, आपके ख़ानदान का शऊरी मेयार बुलंद होगा, तहज़ीबी रिवायात में उम्दा ज़ौक़ दिखाई देने लगेगा, ख़ानदान के अफ़राद में हम-आहंगी पैदा होगी और बाहमी मुलाक़ातों में माद्दी चीज़ों को ज़ेर-ए-बहस लाने के बजाय आप तामीरी गुफ़्तुगू कर सकेंगे।

6. **घर और ऑफ़िस में लाइब्रेरी**— घर और ऑफ़िस में लाइब्रेरी ज़रूर बनाएँ। इससे घर का माहौल संजीदा बनेगा। बच्चे, बूढ़े, जवान और आने-जाने वाले सब इस फलदार दरख़्त से फायदा उठा सकेंगे।

7. **ख़ुशी के मौक़े पर किताब का हदिया**— जब भी अज़ीज़-ओ-अक़ारिब में कोई ख़ुशी का मौक़ा आए या शादी-ब्याह हो, किसी बच्चे का रिज़ल्ट अच्छा आ जाए, किसी की सालगिरह हो, तो आप ऐसे मौक़े पर किताब या कहानियों का कोई सेट गिफ्ट कीजिए। इससे कम-से-कम पढ़ने का शौक़ पैदा होगा। किताब से शनासाई पैदा होगी। आज बसारत आ गई, तो कल बसीरत भी पैदा हो जाएगी।

8. **बैग में दावा मैटेरियल ज़रूर रखें**— यह वह मरहला है, जिसमें आप अमली दावत का आग़ाज़ करते हैं। यह अंबिया-ए-किराम की दावत का तरीक़ा है कि वे फ़र्दन-फ़र्दन लोगों से मुलाक़ात करके उन्हें अपना पैग़ाम पहुँचाते थे। दावा बैग में रखकर आप जहाँ कहीं भी हों, गली-कूचे, ऑफ़िस, पब्लिक मक़ामात, बाज़ार,

सफ़र-ओ-हज़र, ख़ुशी-ओ-ग़म हर जगह आप बतौर दाई चल-फिर रहे हैं। इसका इतना बड़ा फ़ायदा है कि आप अपने काम से जा रहे होंगे, लेकिन आप महसूस करेंगे कि मेरे ऊपर तो दावत की ज़िम्मेदारी भी है। यह ज़िम्मेदारी आदमी के अंदर यह जज़्बा पैदा कर देती है कि कब उसे कोई इंसान मिले और वह उसे कोई दावती किताब, रिसाला, पैम्फ़लेट या क़ुरआन हदिया करे। दावत का मैटेरियल बैग में रखने से जहाँ आपके अमल में बतौर दाई इख़्लास आएगा, वहाँ पर मदऊ की तलाश में रहना भी आपकी ज़िंदिगी का अभिन्न अंग बन जाएगा। यहाँ यह बात भी ज़रूरी है कि दाई तमाम लोगों के साथ इंतिहाई करीमान अख़्लाक़ से पेश आए, ख़्वाह वह किसी मज़हब या इलाक़े का इंसान हो, ताकि वह मदऊ का दिल जीत सके। चाहे उसके लिए उसे अपने हक़ से कम पर राज़ी होना पड़े। वह मदऊ से अपनाइयत के साथ बात करे, फिर मुख़्तसिरन अपना तआरुफ़ कराए, ताकि दावा लिटरेचर या क़ुरआन-ए-पाक हदिया करने के लिए माहौल साज़गार हो सके।

9. **पब्लिक मुक़ामात पर दावती मैटेरियल रखना**— जहाँ भी अवामी इज्तिमा हो, जैसे— कोई जलसा, सेमिनार या कॉन्फ़्रेंस, वहाँ जाना और दावती मैटेरियल तक़सीम करना। इसी तरह मस्जिद, स्कूल्स, कॉलेज, हस्पतालों, पार्कों और रेलवे स्टेशन वग़ैरह पर दावा मैटेरियल रखना। वाज़ेह रहे कि कुछ जगहों पर स्कूल या कॉलेज वग़ैरह में दावती काम को पसंदीदा नज़रों से नहीं देखा जाता है या हुकूमती क़ानून उसकी इजाज़त नहीं देता है, तो ऐसी जगहों पर दावती काम से दूर रहना चाहिए।

10. **अहले-इल्म को किताबें गिफ्ट करना**— मसलन— अपने मुहल्ले की मस्जिद के इमाम को, स्कूल के उस्ताद, प्रिंसिपल या दूसरे पढ़े-लिखे लोगों को किताबें गिफ्ट करना वग़ैरह।

11. **मख़्सूस इज्तिमा**— हर स्कूल, कॉलेज, यूनीवर्सिटी और मदरसे में किताब मेला, 'रिजल्ट डे' या फिर 'एनुअल डे' मनाया जाता है। इससे बा-ख़बर रहें और कोशिश करें कि दूसरे दोस्तों के साथ मिलकर वहाँ पर दावती स्टाल ज़रूर लगाए।

12. **कम से कम दावत**— सोशल मीडिया पर जब कोई हिक्मत-ओ-मारिफ़त की बात देखें, उसे पढ़ें और फिर शेयर करें। यह न देखें कि यह किसने शेयर की है, बल्कि यह देखें कि जिस तरह इस पोस्ट से आपको फ़ायदा हुआ है, आपके शेयर करने से किसी और को भी फ़ायदा होगा, इसलिए यह कम-से-कम दावत है कि आप हर अच्छी बात को शेयर करें। इसी तरह जो भी फ्रेंड रिक्वेस्ट आए, उसे ज़रूर एक्सेप्ट करें।

13. **स्टडी सर्कल**— इसका मतलब यह कि किताबों के मुताले का हलक़ा क़ायम कीजिए। इसमें खास तौर पर अपने ख़ानदान के लड़के-लड़कियों को शामिल होने के लिए दावत दीजिए, ताकि वे मुबाहसा में आएँ, उनके शुबहात दूर हों और वे यक़ीन के साथ दीन पर चलने वाले बनें। इस तरह दीये से दीया जलेगा।

14. **कार-ए-दावत के लिए दुआ**— बक़ौल मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब, दावत का काम दुआओं के साये में चलता है। हर नमाज़ में दावत की तौफ़ीक़ और दुआओं की नुसरत के लिए एहतिमाम के साथ दुआएँ माँगें। जब आप किसी को किताब दें, उसके लिए ख़ुसूसी दुआ करें। दुआ अमल के लिहाज़ से बज़ाहिर एक छोटा अमल लगता है, मगर नतीजे के एतिबार से दुआ एक आला दर्जे का अमल है। दुआ से आपके अंदर के दाई को प्रेरणा मिलती है। दाईआना ज़िम्मेदारियों का एहसास बढ़ जाता है। बेक़रारी में इज़ाफ़ा होता है और आप तड़प उठते हैं और लरज़ते होंठों से

आरज़ू करते हैं कि ख़ुदाया, मुझे तौफ़ीक़ दे कि मैं तमाम इंसानों को तेरे मंसूबा-ए-तख़्लीक़ से आगाह करूँ। हक़ीक़त यह है कि इंसानों की हिदायत की दुआ करने से ख़ुदा ख़ुसूसी तौर पर दाई की नुसरत के लिए आ जाता है। —शाह ख़ालिद

Google Assistant

Amazon India

Amazon Canada

Amazon Australia

Amazon UK

Amazon US

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

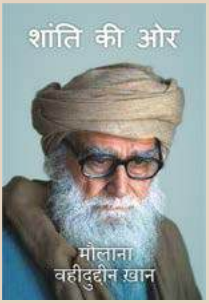

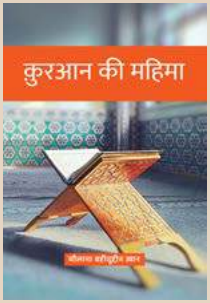

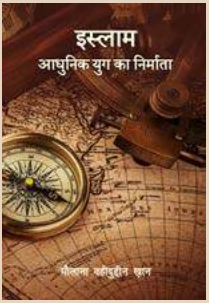

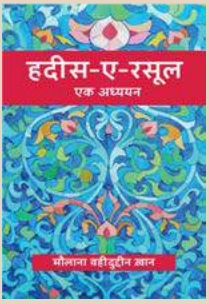

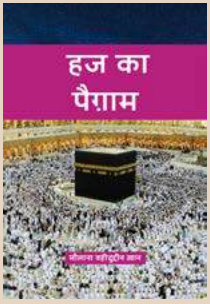

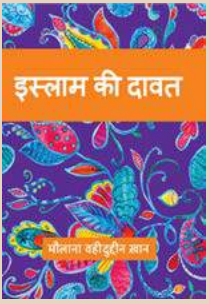

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

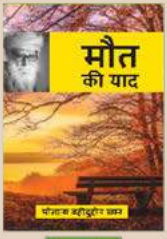

₹40/-

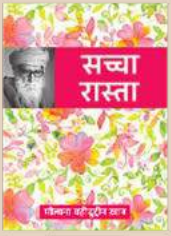

₹20/-

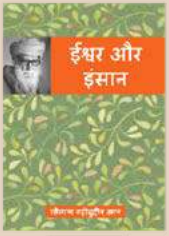

₹40/-

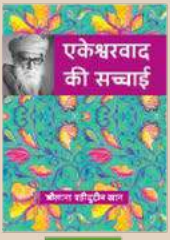

₹30/-

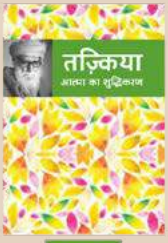

₹45/-

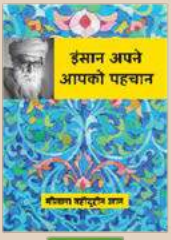

₹20/-

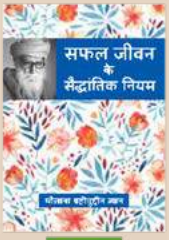

₹40/-